CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सङ्गीत- निबन्ध माला

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

ग्रन्थालय
, वाराणसी-५
03/42

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Registrar
Sangit Samiti
Allahabad.

सङ्गीत-निबन्ध-माला

[इण्टरमीडियट, बी० ए० तथा चतुर्थ वर्ष से लेकर
संगीत-प्रवीण तक के छात्रों के लिये]

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

लेखक

श्री जगदीश नारायण पाठक, "संगीत-प्रवीण"
रजिस्ट्रार
प्रयाग संगीत समिति
इलाहाबाद

प्रकाशक

श्री जगदीश नारायण पाठक "सङ्गीत-प्रवीण"
रजिस्ट्रार,
प्रयाग संगीत समिति,
इलाहाबाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक
श्री जगदीश नारायण पाठक "संगीत प्रवीण"
रजिस्ट्रार
प्रयाग संगीत समिति
इलाहाबाद

आम्नाय-...
...निधि, करौंदी
वाराणसी-5

मूल्य २)

मुद्रक
श्री आई० बी० सक्सेना
माधो प्रिंटिंग वर्क्स, बैरहना
इलाहाबाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

...नाथ-ग्रन्थालय,
...निधि, करौंदी
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

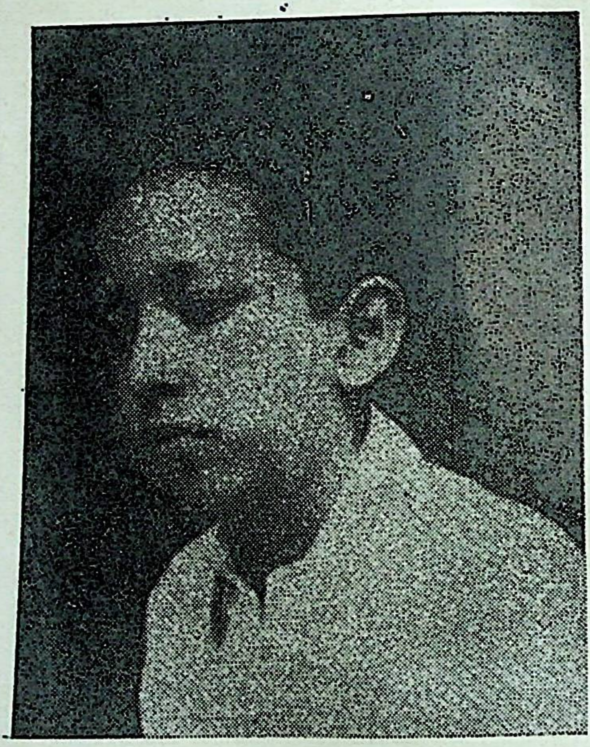

स्वर्गीय श्री सुधाकर नाथ पाठक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समर्पण

दिवंगत श्री सुधाकर नाथ पाठक

प्रिय वत्स,

तुमने अपने पार्थिव जीवन की इस अल्पावधि में भारत के तरुण सङ्गीत-कलाकारों का प्रतिनिधित्व कर अपने जिस विलक्षण सङ्गीत प्रदर्शनों से संगीत-जगत को ओत-प्रोत कर दिया उसकी संस्मरणात्मक प्रतिध्वनि से ऐसा कौन मानव है जिसकी हृदत्तन्त्री के तार झंकृत न हो उठेंगे। तुम्हारे संगीत की कलात्मकता पर मुग्ध होकर अमरों ने तुम्हें सदा के लिए अपने निकट बुला लिया। यद्यपि तुम महानाद की अनन्त राशि में तिरोभूत हो गए हो, तथापि तुम्हारा स्वर्गीय संगीत अब भी तुम्हारी अमरता का दिव्य-सन्देश दे रहा है।

मैं तुम्हारे कलात्मक जीवन की इस महाप्रयाण-मूलक अवधि में कुछ न कर सका, इस कठोर मर्माघात से परितप्त होकर मेरा हृदय निरन्तर क्षुब्ध रहता है। अतएव हे संगीत कला के अनन्य सेवी, तुम्हारी पावन स्मृति में मेरे महाशोकाकुल हृदय से उद्भूत उद्गारों की प्रतिमूर्त्ति यह "संगीत-निबन्ध-माला" सस्नेह समर्पित।

जगदीश नारायण पाठक,
"संगीत-प्रवीण"
रजिस्ट्रार
प्रयाग संगीत समिति
इलाहाबाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर्गीय श्री सुधाकार नाथ पाठक

प्रियवरात्मज,

तुम्हारे आकस्मिक चिर-वियोग-जन्य मर्माघात से मेरा हृदय महाशोकाकुलता की जिस अनन्त राशि में निरन्तर मग्न रहता है, उसकी अभिव्यक्ति शब्दों द्वारा सर्वथा असम्भाव्य है।

जीवन के अनवकाशित क्षणों में भी तुम्हारी आत्मजीय स्मृति निरन्तर बनी रहती है। तुम्हारे कलात्मक व्यक्तित्व की वह अव्यक्त-स्निग्ध-स्मृति मेरे भग्न अन्तस्तल को सहस्रशः प्रयत्न करने पर भी विफल हो रही है।

तुम्हारे विलक्षण जीवन की अमरता के लिये मैं कुछ न कर सका, इसका मुझे अत्यन्त क्षोभ है। अतएव मेरे हृदयोगार का प्रतिरूप यह "संगीत निबन्ध-माला" तुम्हें प्रीत्यर्थ समर्पित है जो संगीत-जगत् में तरुण एवं प्रौढ़ संगीत शिल्पियों के लिये तुम्हारी अमरता का सन्देश वाहक होगा।

इस प्रतीकात्मक समर्पण में प्रो० जानकार शास्त्री 'साहित्य-रत्न' 'संगीत-प्रभाकर' तथा भारतीय संगीत कला एवं संगीत-सिद्धान्त के मर्मज्ञ श्री राधेश्याम शर्मा का सहयोग एवं साहचर्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

तुम्हारे चिर वियोग से

समुद्विग्न पिता

जगदीश नारायण पाठक 'संगीत-प्रवीण'

रजिस्ट्रार, प्रयाग संगीत समिति

इलाहाबाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय-सूची

१—संगीत	१
२—सहायक नाद	१२
३—पूर्वी थाट का विवेचनात्मक अध्ययन ...	२२
४—शास्त्रीय सङ्गीत शिक्षा	४१
५—मानव-जीवन में सङ्गीत	४५
६—सङ्गीत का दायित्व	४६
७—सङ्गीत की रसानुभूति में ताल का योग ...	५४
८—सङ्गीत और साहित्य	५६
९—ललित कलाओं में संगीत का स्थान ...	६४
१०—अवनद्ध-वाद्य की परम्परा और तबले का विकास	६६
११—रस और राग	७४
१२—संगीत-सम्मेलन	८०
१३—भारतीय संगीत में 'घरानों' की परम्परा ...	८६
१४—शास्त्रीय-संगीत में तान का महत्व ...	९०
१५—शास्त्रीय-संगीत एवं भावसंगीत ...	९६
१६—पृष्ठ-भूमि संगीत	१०२
१७—सम्पूर्ण भारत में एक संगीत पद्धति ...	१०७
१८—चित्रपट-संगीत की लोक-प्रियता ...	११०
१९—भारतीय-संगीत के प्रति विद्यार्थी का कर्त्तव्य ...	११६
२०—शास्त्रीय-संगीत की उपयोगिता ...	१२३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

भारतीय संस्कृति के इस विकासोन्मुख युग में संगीत-कला का क्षेत्र उत्तरोत्तर व्यापक एवं विस्तृत होता जा रहा है। क्रियात्मक संगीत की प्रधानता के साथ-साथ कलाकारों की अभिरुचि उसके सिद्धान्तों और आदर्शों के अनुशीलन की ओर उन्मुख हो रही है। परिणामतः संगीत-शास्त्र विषयक अनेक ग्रंथों का प्रणयन हुआ। किन्तु संगीत-जगत में अभी तक ऐसे ग्रन्थ प्रणीत नहीं हो सके हैं जिनमें तद्विषयक मौलिक निबन्धों का सुन्दर संग्रह हो।

अतएव संगीत-शास्त्र में निबन्ध-साहित्य के इस अभाव की पूर्त्ति के लिये मैंने महत्वपूर्ण विषयों का सम्यक् चयन कर प्रस्तुत ग्रन्थ निर्मित किया है, जिसमें संगीत के छात्रों तथा अध्यापकों की जटिल समस्याओं का सुन्दर समाधान है। प्रस्तुत ग्रन्थ "संगीत निबन्ध माला" में समिति के चतुर्थ वर्ष से लेकर संगीत प्रवीण तक तथा इण्टरमीजियट से बी० ए० तक के परीक्षार्थियों के शैक्षिक स्तर को ध्यान में रखते हुये निबन्धों का उल्लेख किया गया है।

वैसे तो मेरे संगीत विषयक अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु संगीत-निबन्ध-साहित्य का यह ग्रन्थ मेरा प्रथम प्रयास है। साधारण विषयों से लेकर गम्भीर से गम्भीर विषयों का प्रतिपादन अत्यन्त सुगम शैली में इस प्रकार किया गया है कि संगीत-शास्त्र के जिज्ञासुओं के लिये अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा। मुझे आशा और विश्वास है कि आधुनिक संगीत-जगत् मेरे इस उपयोगितात्मक प्रयास का अभूतपूर्व स्वागत करेगा।

जगदीश नारायण पाठक "संगीत-प्रवीण"
रजिट्रार, प्रयाग संगीत समिति,
इलाहाबाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत

प्राकृतिक नियम के अनुसार प्राणी मात्र को आत्म-दर्शन की प्रेरणा होती है, तत्पश्चात् उसकी अभिव्यक्ति करना उसकी स्वाभाविक प्रति-क्रिया होती है। यही अभिव्यञ्जना संगीत की जन्म-दायिनी होती है। अतः उस पर कोई व्यक्तिगत छाप लगा कर कोई विशेष रूप नहीं दिया जा सकता। उसकी सार्वभौम सत्ता को सैद्धान्तिक बन्धनों में बाँधना मानो अधोगति की ओर आवाहन करना है। निर्गुण ब्रह्म पार्थिव बन्धन में बँध कर दैव, मानव, दानव तथा अन्य निम्न-वर्ग के प्राणियों के रूप में भूतल पर सुख-दुख तथा बन्धन-मोक्ष का कारण बन जाता है। फिर संगीत की कौन कहे! व्यक्तित्व की छाप ने मनुष्य-वर्ग को संगीत कला से दूर अनिश्चित काल के लिये अंधकार में फेंक दिया है। यद्यपि संगीत ने मनुष्य को आज तक कभी नहीं छोड़ा क्योंकि वह तो प्रकृति द्वारा ही प्राणी मात्र का सहोदर ही नहीं वरन् अभिन्न अंग भी है। निःसन्देह उसके द्वारा लाभ प्राप्त करना अथवा हानि उठाना यह मनुष्य की स्वयं की बुद्धि और विवेक का कार्य है न कि संगीत का। सङ्गीत को उपयोगी सिद्ध करने के लिये आत्म-दर्शन की सहायता लेनी होगी! साक्षी रूप में मनुष्य का व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन देखना होगा। पशुपक्षियों के हृदय की तरंगों को स्मृति-पटल पर छापना होगा। भिन्न-भिन्न गायक भिन्न-भिन्न स्वर-लहरी के प्रतिपादक हैं। ऐसा क्यों है? अनुभव-शील सङ्गीतकार के कर्ण तथा अन्तः करण पर उपरोक्त तथ्यों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। विवेक द्वारा ही इन कारण और कार्यों का विश्ले-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षण तथा स्पष्टीकरण किया जा सकता है। शास्त्रीय-ज्ञान द्वारा अपने अनुभव के दोष और त्रुटियों का निवारण करना अत्यावश्यक है। अध्ययन, मनन तथा निरन्तर अभ्यास के पश्चात् मनुष्य सङ्गीत के विषय में जिस निष्कर्ष पर पहुँचता है वही उसके लिये उसके सङ्गीत का स्वरूप होता है और लाभप्रद भी होता है अन्यथा कोरी कल्पना और वाद-विवाद अथवा व्यर्थवाद का विषय मात्र रहता है, घातक सिद्ध होता है और समय से पहले भी कभी कभी शंकर स्वरूप में दर्शन दे जाता और ले जाता है।

संगीत एक अभिव्यञ्जना है जिसमें रस और भाव की प्रधानता होती है। रस और भाव का क्षेत्र समाज होता है। मनुष्य का व्यक्ति-गत तथा सामाजिक जीवन विभिन्न अवसरों पर परिस्थितियों के वशीभूत होकर हास-विलास, सुखःदुख तथा अन्य मानवी भावनाओं का आवाहन करता है। उस समय सङ्गीत ही एक ऐसा उपकरण होता है जो अन्तः करण को उसकी मर्यादा लाँघने नहीं देता और जीवन को अति की ओर न जाने देकर सन्तुलित रखता है। अति सर्वत्र वर्जयेत्—वाला सिद्धान्त स्वयंसिद्ध हो जाता है। रणभेरी सुन-कर योद्धाओं की भुजाएँ स्वयं फड़कने लगती हैं। शिशु को आनन्द-विभोर करने के लिये माता की सङ्गीतमयी लोरियाँ ही एक मात्र साधन होती हैं। विद्यार्थी-जीवन में सङ्गीत को चरित्र-निर्माण में जो स्थान प्राप्त है वह किसी एक विद्या अथवा कला को नहीं है। बुद्धि का विकास होता है। स्थूलता नष्ट होती है। स्मृति बलिष्ट होती है। सङ्गीत को लोग कहते हैं 'हवा में गाँठ' लगाना। लोहे के चने चाहें चबाए न जा सकें पर हो सकते हैं परन्तु हवा में गाँठ' यह तो विद्या में भी कल्पना, कला में भी कल्पना केवल स्मृति का विषय रह जाता है जो है—अभिव्यञ्जना।

संगीत प्राणी-वर्ग के लिये एक ईश्वरी देन है जो उसको सदैव दीन-हीन होने से बचा सकती है। Healthy, wealthy

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

and wise बनाने की इसमें अनुपम शक्ति है। नियम से नृत्य करने पर शारीरिक व्यायाम होता है और गठन में सौन्दर्य और शक्ति का संचार होता है। गायन से मनुष्य उसी अवस्था को प्राप्त होता है जिसको योगी लोग प्राणायाम के द्वारा प्राप्त होते हैं। अन्तर इतना है कि एक स्वयं आनन्द को प्राप्त होता है और श्रोता-गणों के मानसिक भार को कुछ समय के लिये विस्मृत करा देता है एवं श्रद्धा और प्रेम का पात्र बन जाता है। जब कि दूसरा केवल योगिक क्रियाओं के द्वारा शरीर पर विजय प्राप्त करता है और दर्शकों को मोहित करके अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। शरीर-विज्ञान तथा मनोविज्ञान-वेत्ताओं का विश्वास हैकि भुजाओं को वाद्य द्वारा व्यायाम कराने पर मनुष्य की स्मृति एवं मौलिकता में विशेषताएँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वादन मास्तिष्क के विकास के लिये परम उपयोगी साधन है। सारांश यह कि परमपिता की यह देन मनुष्य के शारीरिक,मानसिक तथा नैतिक जीवन में अनिवार्य सहयोगी अथवा छाया पुरुष है। जो इसको पहचान कर इसका सहयोग प्राप्त करना अपना परम भाग्य समझते हैं वे वास्तव में भाग्यशाली होते हैं। परन्तु इसकी पहचान के लिये योग्य गुरु की सेवा, शास्त्रों का अध्ययन, मनन एवं चिन्तन, तथा ब्रह्मचर्य जीवन वाँछनीय है। जीते जी मोक्ष प्राप्त करने का एक-मात्र साधन संगीत ही सिद्ध होता है। संसार की विभूतियाँ उसके आस पास मानो उसकी सेवा का आदेश प्राप्त करने के हेतु नतमस्तक खड़ी रहती है। प्रभु तों भक्तों के काज साकार रूप धारण कर ही लेते हैं परन्तु संगीतकार योगी की दुनिया भी अजीब है जहाँ माया निराकार हो कर छायापुरुष बन जाती है और तब उस योगी को अपने जाल का दिग्दर्शन कराती हैं, फँसाती नहीं रिझाती है। ऐसी है वह दैन, परन्तु गुरुकृपा और आत्म-निवेदन की दो परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पहले नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत क्या है ? प्रेम है। दर्शन करके देवता को सूखा टाल देना ठीक नहीं होता। प्रेमी अपनी आत्मा को शुद्ध करता है। अन्तः करण के तरल विन्दुओं से हँस को मञ्जन कराता है, निखारता है तत्पश्चात् नाद ब्रह्म रूपी दर्पण में दर्शन कराता है। प्रतिविम्ब से ब्रह्माण्ड आलोकित होता है। प्राणीमात्र की तन्द्रा भंग होती है। अन्तः करण से अन्तः करण को प्रेरणा मिलती है। स्वयं का स्वयं क प्रति प्रणय-प्रदर्शन होता है। दृष्टि अन्तर्मुखी हो जाती है। ऐस है वह अलौकिक प्रेम-संगीत। लोगों ने नाम रख दिया बैजू बावरा, 'मीरा भई वावरी'। इन महान प्रेमियों ने दर्शन पाया प्रेम-संगीत। का जो तानसेन जैसे नायक की प्रतिभा स्वयं फीकी पड़ गई। कबीर दास की बहुरिया प्रीतम के मिलन को चली परन्तु प्रेम संगीत की बहुरिया को नाद-ब्रह्म स्वयं मनाता है और मनाया भी ऐसा कि पशु पक्षी, चर अचर सब मोहित हो गये। मनुष्य की तो कौन कहे महात्मा सूर इस तथ्य के उदाहरण है कि प्रेम-संगीतकार की इच्छा-मात्र से सांसारिक बन्धन शिथिल ही नहीं वरन् निष्क्रिय भी हो जाते हैं। जैसे जन्मान्ध होकर वाह्य कार्य व्यवहार का दर्शन कर लेना। अभी भी ऐसे संगीतकार हैं जो चिन्तित मन को भी चैन से सुला सके हैं। ऐसा है वह विशुद्ध प्रेम रूपी संगीत जो शास्त्रीय बन्धनों को चुनौती देकर उन पर विजय प्राप्त कर लेता है।

इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि संगीत के क्षेत्र में शास्त्र का महत्व नहीं। भगवान श्री कृष्ण का वचन है कि 'मुझको ज्ञानी से अधिक भक्त प्यारा है परन्तु ज्ञानी भक्त परम प्रिय है। कारण यह कि भक्त केवल अपना कल्याण कर सकता है। परन्तु ज्ञानी भक्त अपना तथा सम्बन्धित समाज का भी कल्याण करता है। समाज सेवा के हेतु तर्क व्याकरण तथा technique की परम आवश्यकता है। यदि संगीत कार से आकर्षित होकर किसी की जिज्ञासा जागृत होती है और वह उपाय-प्रत्य साधक के रूप में आना चाहता है तो उसको सन्मार्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर लाने के लिये संगीतकार को नाद, स्वर, श्रुति, एवं रागों के नाम रूप, गुण, कर्म और स्वभाव का तर्क-सिद्ध ज्ञान तथा साधना पूर्ण प्रदर्शन करने की क्षमता सात्विक-वृत्ति के रूप में परमावश्यक है। अन्य विद्याओं तथा कलाओं के साथ संगीत की उन्नति भी होना अनिवार्य है परन्तु हो कैसे ? इस प्रश्न का उत्तर देने योग्य होगा कोई विरला ज्ञानी भक्त। केवल ज्ञानी अथवा निपट भक्तों की कमी नहीं है। मूर्ति, लक्ष्मी माँ की, शृंगार, माँ सरस्वती का ! पुजारी रहस्य जानते हैं। सेवक बाहरी दर्शन में भुलाने हैं। पर यह सब भी तो माँ की इच्छा पर ही निर्भर है। सेवक हो सो करे सेवकाई। परन्तु किसकी ?

बीसवीं शताब्दी में संगीत की प्रगति

यों तो संगीत के पुजारियों की संख्या इतनी अधिक हो चुकी है कि उनकी जीवनियाँ एवं कला कौशल एक स्वतंत्र विषय बनता जा रहा है। परन्तु इस क्षेत्र में जितना गौरव पं० विष्णु दिग्म्बर जी तथा पं० विष्णु नारायण भातखंडेजी को प्राप्त है उतना अन्य को नहीं गत चार शताब्दियों में संगीत इस हीन दशा को पहुँच चुका था कि वह केवल धन एवं सत्ता-सम्पन्न विलास-प्रिय नराधमों का मनोरंजन-मात्र अवशेष था। उपरोक्त विभूतियों की कठोर तपस्या अन्ततः संगीत को उस गर्त से मुक्त करने में सफल हुई जहाँ पर जाना जन साधारण को दृष्टि में हेय था। जो माता पिता संगीतकारों की चरित्र-हीनता को संगीत के विशेषणों में स्थान देकर अपनी सन्तान को इस दैवी सम्पदा से वंचित रखते थे वे भी इन महापुरुषों के निर्मल चरित्र तथा निरंतर संघर्ष से प्रभावित हुए और इस प्रकार शनैः शनैः संगीत भजन कीर्तन का विशद रूप धारण करता हुआ समाज में सम्मानित हुआ। प्रचार कार्य में इस प्रकार अभूत पूर्व सफलता प्राप्त होने से संगीत को स्थाई रूप देने की इच्छा भी स्वाभाविक ही थी फलतः श्री भातखण्डेजी ने धनी मानी व्यक्ति एवं कलाकारों की सम्मति से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(Marris College, Music Lucknow) मॉरिस म्यूज़िक कालेज लखनऊ की स्थापना की। इधर श्रीविष्णु दिगम्बरजी ने पूना में गन्धर्व महाविद्यालय की और प्रयाग में प्रयाग-संगीत-समिति की नीव डाली। इस संस्था के कर्णधारों ने अपने घोर परिश्रम एवं विचार-शीलता से संगीत की इन अंशों तक सेवा की कि भारतवर्ष की अन्यलग-भग १५० संस्थाओं में इसका नाम अग्रगण्य है। प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार की विशेष कृपा का पात्र बन चुकी है। कारण यह है कि देश विदेशों के विद्यार्थियों ने इस समिति में शिक्षा प्राप्त करके विदेशों में भी इसका नाम उज्ज्वल किया है। फलस्वरूप सरकार ने इसको प्रशि-क्षण केन्द्र (Training Centre) स्थापित करने की मान्यता दी। और विकास योजना को प्रति फलित करने के हेतु अपूर्व आर्थिक सहायता प्रदान करके उसकी सेवाओं का वास्तविक मूल्यॉंकन किया है।

विद्यार्थियों के हेतु मार्ग निर्दिष्ट करने के साथ-साथ उच्चकोटि के कलाकारों की भी यथोचित सेवा करने का विचार सुदृढ़ एवं परि-पक्व अवस्था को प्राप्त हुआ। बम्बई बड़ौदा, कलकत्ता, प्रयाग और जालंधर स्थानों में संगीत सम्मेलनों के ताँते बँधे। यातायात के साधन सुलभ होने से कलाकारों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर कला प्रदर्शन करने में अभिरुचि हुई। इस प्रकार सामयिक सम्मेलनों द्वारा देशीय-संगीत को भी प्रोत्साहन मिला और उसके विकृत स्वरूप में निहित माधुर्य का काया कल्प हुआ और मनोरंजन विशेष का साधन बनता हुआ प्रतियोगिता का विषय बन गया। परिणाम यह हुआ कि जो रसिक-हृदय संगीत की व्याकरण तथा गणित-कौशल की जटिल-ताओं को सरदर्द समझते थे अथवा समय के अभाव से उस ओर ध्यान नहीं दे सकते थे वे भी संगीत के समर्थक और सेवी बन गये।

ज्यों-ज्यों संगीत मानसिक-क्षुधा पूर्ति का साधन बनता जाता था त्यों त्यों उसके द्वारा धनोपार्जन करने वालों का भी समाज अपनी स्वार्थ-सिद्धि के हेतु संगीत का समर्थक एवं सहायक होता जाता था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रामोफोन के अविष्कार ने दोनों वर्गों का सामञ्जस्य किया इधर लोगों ने इच्छित संगीत प्राप्त किया उधर लोगों ने सङ्गीत के रूप को भिन्न-भिन्न प्रकार सुसज्जित कर यथा-सम्भव धनोपार्जन किया। तत्पश्चात् सिनैमा के प्रचार ने तो सङ्गीत की धारा ही बदल दी। निःसन्देह इस प्रचार ने जन साधारण की दृष्टि में मार्गीय-संगीत का महत्व कम कर दिया परन्तु शिक्षित-वर्ग पर इसका प्रभाव कुछ और ही हुआ। पुत्र पिता से अधिक सुन्दर होने पर भी शोभित अपने ही स्थान पर होता है पिता के स्थान पर नहीं। विद्या तथा कला प्रेमियों ने शास्त्रों की खोज करनी प्रारम्भ करदी और संगीत की स्थिति को और भी सुदृढ़ एवं संगठित रूप देने के लिये राजकीय सहायता एवं सद्भावना प्राप्त की। राज कार्य एक चक्र के रूप में चलता है। संगीत ने भी उसी सुदर्शन चक्र का रूप धारण कर लिया और चल पड़ा भक्त की रक्षा करने के उद्देश्य से।

रेडियो के आविष्कार ने संगीत को भौतिक रूप में भी सार्वभौम सत्ता प्रदान की। संगीत की बिखरी हुई रूप रेखा को अब सुव्यवस्थित रूप प्राप्त हुआ है। कलाकारों को उनकी कला के अनुरूप श्रेणियाँ प्रदान होती है। पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं। आज उनको अपना संगीत संसार के कोने-कोने में पहुँचा देने के समस्त साधन उपलब्ध हैं। युवकों के लिये पृथक प्रबन्ध है। नारियों के लिये, जिनको कि ईश्वर की ओर से संगीत एक भूषण के रूप में प्रदत्त है रेडियो की ओर से भी विशेष स्थान प्राप्त है।

इस प्रकार सार्वजनिक सेवा के साथ-साथ केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार ने संगीत को शिक्षा-विभाग में भी विशेष स्थान दिया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के समय केन्द्रीय-सरकार ने संगीत-नाटक एकेडमी' नामक संस्था को जन्म दिया। इसी संस्था के द्वारा अनुसन्धान-कार्य, शिक्षा-संस्थाओं का संगठन, राष्ट्रीय संगीत समारोह संचालन एवं आयोजन होता है। इन कार्यों में विशेष सफलता प्राप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने पर कलाकार को पुरस्कार भी दिये जाते हैं। अच्छे कलाकार बनने वाले युवकों को उनकी योग्यता के अनुसार राजकीय सहायता भी मिलती है। उपाधियाँ भो प्रदान की जाती है। सरकार को उदारता एवं सद्भावना का स्वरूप वे शिष्ट मण्डल भी हैं जो विदेशों में जाकर भारतीय संगीत का मस्तक ऊँचा कर आये हैं और कर रहें हैं और आशा है कि भविष्य में भी करते रहेंगे।

शिक्षा विभाग ने संगीत को भी वही स्थान दिया है जो अन्य विषयों को और इस प्रकार उन्ही अंशों तक वह अनिवार्य विषय बन कर अन्त में विशेष योग्यता के हेतु ऐच्छिक विषय बन जाता है। विद्यार्थियों को अपनी अभिरुचि के अनुसार इस क्षेत्र से संगीत में उन्नति करने के लिये वही साधन उपलब्ध हैं जो संगीत की विशेष संस्थाओं में।

इस प्रकार विभूतियों के व्यक्तित्व एवं साधकों की साधना से प्रभावित होकर, सभ्य एवं अनभिज्ञ दोनों वर्ग के समाज ने संगीत को अपनाया और उठाया। जनता की आवाज ही ईश्वरीय प्रेरणा होती है। अर्थात् जनता की भावनाओं के अनुरूप ही राजकीय कार्य-क्रम भी चलना बाँछनीय है। विदेशी सत्ता में भारतीय जनता की आवाज में शक्ति नहीं थी आज अपनी सरकार ने उसको सुना और उसको शक्ति प्रदान की। संगीत के प्रति जनता की अर्ध-चेतन भावना को पुनः स्वस्थ होने के साधन प्राप्त हुए और दिग्विजय का ढोल बज उठा। जिधर जाइये कहीं न कहीं मानवी कोयल की कूक सुनाई पड़ ही जायगी। नगरों का तो कहना ही क्या, बीहड़ गाँव में भी ग्रामोफोन पर रेकार्ड सुनने को मिल ही जाता है। ग्रामीणों को भी अपना कार्य-क्रम प्रसारित करने का अवसर प्राप्त है तो अवश्य ही उनमें संगीत के प्रति सद्भावना का जाग्रत होना स्वाभाविक है। तब जब कि संगीतकार के नाम से जन साधारण को घृणा होती थी और अब जब कि संगीतकार को सभ्य समाज में निमंत्रित करके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथोचित सम्मान, सेवा सुश्रूषा तथा धन से विभूषित किया जाता है इन दोनों दशाओं में आकाश पाताल का अन्तर है। संगीत के पिछले पचास वर्षों के पूर्वार्द्ध की दशा को देखने वालों को यह कभी स्वप्न में भी ध्यान न होगा कि संगीत इतनी शीघ्रता से इतनी उन्नत दशा को प्राप्त हो सकेगा। अब इस उत्कर्ष को स्थाई रखने के लिये उन तपस्वियों की आवश्यकता है जो अपनी प्रतिभा से संसार को चमत्कृत कर सकें जिससे जन साधारण के अन्तःकरण में संगीत के प्रति नित्य नवीन श्रद्धा से पूर्ण भावना का संचार हो और वह संगीत तथा कलाकारों की और भी तन्मयता से सेवा कर सके क्योंकि व्यक्तित्व का उद्धार समाज के वश में और दोनों का उद्धार राजकीय सहयोग एवं सद्भावना के वश में है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहायक नाद

सहायक नाद की विवेचना करने के पूर्व 'नाद शब्द' की व्याख्या वांछित प्रतीत होती है। बात यह है कि नाद शब्द से पूर्ण परिचित हुये बिना, सहायक नाद की नगरी में विचरण करना कठिन है। यों तो संसार की प्रत्येक ध्वनि किसी न किसी प्रकार के संघर्ष से ही उत्पन्न होती है। संघर्ष के परिणाम स्वरूप कम्पन उत्पन्न होता है जो दो प्रकार का होता है। पहला अनियमित और दूसरा नियमित अनियमित कम्पन द्वारा जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसे बात चीत अथवा शोरगुल कह सकते हैं और नियमित कम्पन द्वारा जो ध्वनि उत्पन्न होती है वह संगीतोपयोगी होती है और उसी को संगीत की भाषा में 'नाद' कहते हैं।

नाद की तीन विशेषतायें होती हैं। १—नाद का छोटा बड़ा होना। २—नाद की ऊँचाई और निचाई। ३—नाद की जाति अथवा गुण। जब हम नाद शब्द की व्याख्या करही रहे हैं। तो इसकी विशेषताओं पर साधारण रूप से प्रकाश डाल देना असंभव न होगा।

१—नाद का छोटा बड़ा होना—जब हम किसी वस्तु को आन्दोलित करते हैं तो वह शून्य में लहर पैदा करता है। वह लहर जितनी चौड़ी होगी नाद उतना ही बड़ा होगा और लहर जितनी ही कम चौड़ी होगी नाद उतना ही छोटा होगा। तात्पर्य यह है कि नाद का छोटा होना आन्दोलन की चौड़ाई पर निर्भर है। एक ही नाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छोटा बड़ा हो सकता है परन्तु ऊँचा नीचा नहीं। जैसे जब वही 'स' धीरे से उच्चारण करेंगे तो नाद छोटा हो जायेगा।

२—नाद की ऊँचाई निचाई—प्रत्येक नाद की कुछ न कुछ आन्दोलन संख्या होती हैं। प्रति सेकण्ड बराबर बराबर कम्पन (Viberation) होने को ही हम आन्दोलन (Frequency) कहते हैं। जब किसी स्वर का प्रयोग हम कण्ठ द्वारा अथवा वाद्य द्वारा करते हैं तब उसकी आन्दोलन संख्या प्रसि सेकन्ड एक सी ही रहती है। इसी से वह स्वर स्थिर रहता है। अन्तर केवल इतना हो सकता है कि पहले सेकन्ड की अपेक्षा दूसरे सेकन्ड में वह ध्वनि दुर्बल हो सकती है परन्तु वह ध्वनि ऊँची या नीची नहीं हो सकती। नाद की ऊँचाई आन्दोलन की संख्या पर निर्भर है। आन्दोलन की संख्या जितनी ही अधिक होती जायेगी नाद उतना ही ऊँचा होता जायेगा। इसके विपरीत आन्दोलन की संख्या जितनी ही कम होती जायेगी नाद उतना ही नीचा होता जायेगा। जैसे २४० का 'स' २७० का 'रे' और ३०० का 'ग' है। अब इन स्वरों में अपेक्षाकृत आन्दोलन की संख्या बढ़ती गई है और क्रमशः स्वर एक दूसरे से ऊँचा होते गये हैं।

३—नाद की जाति अथवा गुण—देखिये यह हमारे मतलब की बात आ गई। इसी पर 'सहायक नाद' अवलम्बित है। नाद की जाति अथवा गुण उसके साथ स्वयं उत्पन्न होने वाले सहायक नादों के संख्या क्रम और प्रावल्य पर निर्भर है। इन्हीं विशेषताओं के कारण संसार के प्रत्येक कण्ठ अथवा वाद्य की ध्वनि पृथक-पृथक पहिचान ली जाती है। आगे चलकर हम इन्हीं सहायक नादों के संख्या क्रम और प्रावल्य (Prominency) पर विचार करेंगे।

संसार की कोई भी ध्वनि अकेली नहीं निकलती। जब हम किसी भी स्वर को उच्चारण करते हैं तो उस मूल नाद के साथ कुछ और ध्वनियाँ जो स्वयं उत्पन्न होती है और जो कम से कम मूल नाद से दुगुनी ऊँचाई की होती हैं उन्हें सहायक नाद अथवा स्व्यम्-भू स्वर कहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि किसी नाद के साथ और ध्वनियाँ स्वयं किस प्रकार उत्पन्न होती है। जब हम किसी तार को छेड़ते हैं तो वह तीव्र गति से शून्य में दौड़ने लगता है जिसके कारण हवा में संघर्ष उत्पन्न होता है और उसी के वेग से शून्य में निश्चित स्थानों पर जबकि तार के आने और जाने से हवा का वेग टकराता है तो अलग से एक वातावरण उत्पन्न हो जाता है और वहाँ से एक अलग स्वर सुनाई देने लगता है जो कम से कम तार सप्तक का होता है। इसका स्पष्टीकरण विशेष रूप से इस प्रकार किया जा सकता है कि आप एक पतला और लम्बा बेंत ले लीजिये और उसे जोर से लपलपाइये। तो 'सन्न सन्न' की आवाज आपको सुनाई देगी। यह समझाने में कठिनाई न होगी कि यह आवाज बेंत के आने जाने के कारण ही वायुमण्डल में उत्पन्न होती है। दूसरी बात यह हो सकती है कि आप बिजली का पंखा पूर्ण वेग से चला दीजिये। आप देखेंगे कि वह बड़े वेग से चक्कर काटने लगता है जिसके कारण वातावरण में एक ध्वनि उत्पन्न होती है जिससे स्वर मिलाकर आप सरलता से गा सकते हैं। यह ध्वनि वायुमण्डल में संघर्ष से ही उत्पन्न होती है। इसी प्रकार तार अथवा कण्ठ की ध्वनि-तन्त्रियाँ (vocal chords) किसी भी स्वर को प्रस्तुत करने के लिये तीव्र गति से आन्दोलित होती हैं और उसकी सनसनाहट में स्थान-स्थान पर नई ध्वनियाँ उत्पन्न हो जाती है।

अब हम आपको यह बतायेंगे कि किसी भी नाद से शास्त्र की दृष्टि से कै गुनी ऊँचाई तक के सहायक नाद उत्पन्न हो सकते हैं। गणित के आधार पर तो किसी भी मूल नाद से नौगुनी ऊँचाई तक के सहायक नाद निकाले जाते हैं। इतना आप अवश्य पूछ सकते हैं कि केवल नौगुनी ऊँचाई तक के ही सहायक नाद क्यों निकाले जाते हैं। इसका साधारण उत्तर तो यह हुआ कि एक से लेकर के नौ तक की संख्या ही इकाई होती है। दहाई के सहायक नाद अवश्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी न किसी इकाई के पाँच गुने छ० गुने इत्यादि हो सकते हैं इसलिये इकाई तक की संख्याओं के ही सहायक नाद निकालना पर्याप्त है। परन्तु केवल इतना ही उत्तर सन्तोषजनक नहीं है। इस पर सूक्ष्म दृष्टि डालना आवश्यक है।

मनुष्य के कान की भी कुछ मर्यादा होती है। आदमी के कान या तो बहुत नीची आवाज नहीं सुन सकते या बहुत ऊँची आवाज नहीं सुन सकते। मनुष्य के कान की मर्यादा इस प्रकार है। हम कम कम १६ आन्दोलन और अधिक से अधिक बीस हजार आन्दोलन तक शब्द सुन सकते हैं। परन्तु सङ्गीतोपयोगी ध्वनि कम से कम पचास आन्दोलन और अधिक से अधिक ५ हजार आन्दोलन तक की हो सकती है। इससे अधिक उँचा स्वर इतना पतला हो जाता है कि हम उसे सङ्गीतोपयोगी ध्वनि नहीं कह सकते हैं।

संसार में कुछ पशु पक्षी ऐसे अवश्य हैं जो बहुत कम और बहुत अधिक आन्दोलन के स्वर सुन सकते हैं और बहुत ऊँचे स्वर में बोलते भी हैं। जैसे सर्प कम से कम आन्दोलन का स्वर सुन सकता है और पाश्चात्य देशों में चमगादर जैसा ही एक पक्षी पाया जाता है जिसके कान बहुत ही विशाल होते हैं। यह पक्षी लाखों आन्दोलन के स्वर सुन सकता है गिलहरी की ध्वनि आप सुने तो आप को पता लग जायेगा कि कितनी ऊँची ध्वनि में यह बोलती है। अब कान के विषय में भी थोड़ा सा कह देना आवश्यक है।

मनुष्य के कान का पर्दा मटर के दाने के समान होता है जो आवाज से चोट खाकर फैलता है। इसमें छोटे बड़े बहुत से पतले पतले रेशे होते हैं।

आपने पतले कागज का साँप का खिलौना देखा होगा। इसे बच्चे मुँह में लगाकर फूंकते हैं तो वह फैल जाता है और जब मुँह से निकाल लेते हैं तो सिकुड़ जाता है ठीक यही गति कान के पर्दे की भी है जो आवाज के धक्के खाकर फैलती सिकुड़ती रहती है और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके रेशों की सजावट हारमोनियम के रीड के समान होती है। हारमोनियम की रीड तो आपने देखी ही है वह क्रमशः एक दूसरे से बड़ी होती है। जब हम कोई स्वर बोलते हैं तो कान का पर्दा फैलता है और जिस प्रकृति की ध्वनि होती हैं उसी प्रकृति के रेशे से टकराता है। तब हम उसे सुन लेते हैं। स्पष्टी करण के लिये आप भिन्न भिन्न दो बहरे आदमियों को ले लीजिये। उनमें से एक यदि बहुत ही धीमी आवाज सुन सकता है तो दूसरा केवल बहुत ही तीव्र आवाज को सुन पायेगा। इससे स्पष्ट हैं कि कान के रेशे जहाँ से खराब होंगे उस प्रकृति की ध्वनि उक्त व्यक्ति नहीं सुन पायेगा। मनुष्य के कान में कम से कम सोलह और अधिक से अधिक २० हजार तक के आन्दोलन के स्वर सुनने के लिये तार लगे हुये हैं।

यह हम ऊपर बता ही चुके हैं कि ५० आन्दोलन से ५ हजार तक के आन्दोलन के स्वर संगीतोपयोगी हो सकते हैं। अब हम आपको यह बतावें कि संगीत में अधिक से अधिक नौ सप्तकों का प्रयोग हो सकता है जो तीन सप्तक मन्द्र, तीन सप्तक मध्म, और तीन सप्तक तार के होते हैं। अब 'स' की आन्दोलन संख्या २४० मानकर तीन सप्तक में ले जाना चाहें तो उसकी आन्दोलन संख्या में २ से भाग देना चाहिये और यदि किसी ध्वनि को तार सप्तक में ले जाना हो तो उसकी आन्दोलन संख्या में दो से गुणा करना चाहिये। क्योंकि मध्य सप्तक से मन्द्र सप्तक $\frac{१}{२}$ गुना नीचा और मध्य सप्तक से तार सप्तक २ गुना ऊँचा होता है। अब हम मध्य सप्तक के 'स' को तीन सप्तक मन्द्र में उतारेंगे :—

मन्द्र के तीन सप्तक—

(१) २४० ÷ २ = $\frac{२४०}{२}$ = १२० मन्द्र सप्तक का 'स'

(२) १२० ÷ २ = $\frac{१२०}{२}$ = ६० मन्द्र अति मन्द्र सप्तक का 'स'

(३) ६० ÷ २ = $\frac{६०}{२}$ = ३० अति अति मन्द्र सन्तक का 'स'

(४) ३० ÷ २ = $\frac{३०}{२}$ = १५ अति अति अति मन्द्र सप्तक का 'स'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपर्युक्त तालिका द्वारा यह स्पष्ट हुआ कि तीसरे मन्द्र सप्तक का स ग ३० आन्दोलन का है। इसे हम कान से सुन सकते हैं परन्तु संगीत में प्रयोग नहीं कर सकते क्योंकि संगीतोपयोगी ध्वनि तो कम से कम ५० आन्दोलन की होती है। इससे स्पष्ट हुआ कि मन्द्र के तीसरे सप्तक में हम उन्हीं स्वरों का प्रयोग कर सकते हैं जो ५० आन्दोलन से अधिक हों और चौथे सप्तक का परिणाम आप देख ही रहे हैं। भला मनुष्य के कान १५ आन्दोलन के शब्द कब सुन सकेंगे। क्योंकि मनुष्य उस आन्दोलन से कम का शब्द सुन ही नहीं सकता है।

इसी प्रकार अब तार के तीन सप्तक देखिये। अब हम मध्य 'स' की आन्दोलन संख्या को दो से गुणा करके तीन सप्तक तार में ले जायेंगे।

तार के तीन सप्तक :—

(१) २४० × २ = ४८० = तार 'स'

(२) ४८० × २ = ९६० = अतितार 'तार'

(३) ९६० × २ = १९२० = अति अतितार 'स'

(४) १९२० × २ = ३८४० = अति अति अति तार 'स'

(५) ३८४० × २ = ७६८०

उपर्युक्त तालिका द्वारा आप देखेंगे कि तार में हम तीन ही सप्तकों का प्रयोग कर सकते हैं। उसके पश्चात् आन्दोलन की संख्या ५००० से अधिक हो जाती है इसलिये उस सप्तक की ध्वनियाँ संगीतों में प्रयोग नहीं हो सकतीं। परन्तु यह न समझिये कि इन सभी सप्तकों का प्रयोग मनुष्य के कण्ठ द्वारा होता है। मनुष्य के कण्ठ की मर्यादा सप्तक तक ही सीमित है। यह तो वाद्यों की ही क्षमता है जो इतने नीचे और इतने ऊँचे स्वर निकाल सकते हैं।

अब हम नाद की तीसरी विशेषता जो नाद की जाति अथवा गुण है और जो सहायक नादों के संख्या क्रम और प्राबल्य पर निर्भर

फा०—२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं, उस पर प्रकाश डालते हैं जिसके कारण हमारी और आप की कण्ठध्वनि पृथक है। यह तो पहले बताया ही जा चुका है कि सहायक एक से नौ तक की संख्याओं के गणित के ही आधार पर निकाले जाते हैं। अब हम संख्या शब्द को लेते हैं। प्रत्येक कण्ठ अथवा वाद्य से कोई आवश्यक नहीं है नौगुनी ऊँचाई तक के सहायक नाद अवश्य ही निकलते हैं। जैसे किंस, कण्ठ से चार गुनी, किसी से पाँच गुनी, किसी से छः गुनी इत्यादि ऊँचाइयों के सहायक नाद उत्पन्न होते हैं जो प्रत्येक कण्ठ की ध्वनि पृथक करने में सहायक होते हैं। परन्तु केवल इतनी ही बात होती तो सम्पूर्ण विषयों में केवल नौ प्रकार की ही आवाजें होतीं तब यह कठिनाई हो जाती कि मैं बोल रहा हूँ कि आप, क्योंकि हो सकता था कि हम दोनों के कण्ठों से एक ही प्रकार के सहायक नाद निकलते। तो संख्या के साथ-साथ क्रम भी लगा हुआ है।

एक से लेकर नौ तक की संख्याओं में रूढ़ और योगिक (Odd and even figures) संख्यायें हैं। संख्या के अतिरिक्त प्रत्येक कण्ठ के सहायक नादों के ही क्रम में भी अन्तर होता है। हो सकता है कि किसी कण्ठ से केवल यौगिक संख्याओं के ही सहायक नाद निकलते हों और यह भी हो सकता है कि किसी कण्ठ से केवल रूढ़ संख्याओं के ही सहायक नाद निकलते हों। परन्तु केवल इतनी ही बात नहीं है। अगर ऐसा होता तो प्रयत्नशील मानव जाति ध्वनियों का वर्गीकरण करने में सफल हो जाती और यह निश्चय कर देती कि संसार में अमुक संख्या की ही ध्वनियाँ हैं। वह तो ऐसा होता है कि विभिन्न प्रकार के रुढ़ और योगिक संख्या के सम्मिश्रण द्वारा नाना प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं जो एक दूसरे कण्ठ अथवा वाद्य की ध्वनि पृथक करती रहती हैं। अब प्रावल्य का प्रभाव देखिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक से लेकर नौतक की संख्याओं में किसी भी संख्या और क्रम के सहायक नाद उत्पन्न हो सकते हैं परन्तु उसमें कोई न कोई सहायक नाद और सहायक नादों की अपेक्षा अधिक प्रबल होता है चाहे वह ध्वनि चार गुनी, पांच गुनी, छः गुनी अथवा किसी भी ऊँचाई की हो सकती है। जैसे तानपूरे के षड्ज के तार से गन्धार और पंचम के तार से ऋषभ स्पष्ट सुनाई देते हैं जिन्हें किंचित अभ्यस्त सङ्गीतज्ञ के कान भी सुन सकते हैं। प्रत्येक कण्ठ और वाद्य में पृथक सहायक नादों का प्राबल्य होता है जिसके कारण ध्वनि चाहे वह वाद्य की हो या कण्ठ की सरलता पूर्वक पृथक-पृथक पहचान ली जाती है। अब तानपूरे से निकलने वाले सहायक नादों की तालिका नीचे दी जाती है।

मध्य 'स' की आन्दोलन संख्या २४० मानी है और तानपूरे के षड्ज का तार मन्द्र षड्ज से मिलाया जाता है। इस लिये २४० आन्दोलन की ध्वनि का २ से भाग देकर मन्द्र सप्तक में ले जाते हैं जो मन्द्र षड्ज की आन्दोलन संख्या होगी। और इसी संख्या को एक से नौ तक गुणा करके देखेंगे कि आखिर तानपूरे के षड्ज से कौन-कौन से सहायक नाद उपलब्ध हैं।

$२४० \div २ = \frac{२४०}{२} = १२० =$ मन्द्र 'स'

सहायक नादों की उत्पत्ति

$१२० \times १ = १२० =$ मूल नाद (मन्द्र षड्ज)

$१२० \times २ = २४० =$ मध्य 'स'

$१२० \times ३ = ३६० =$ मध्य 'स'

$१२० \times ४ = ४८० =$ तार 'स'

$१२० \times ५ = ६००; [\frac{६००}{२} = ३००] =$ तार 'ग'

$१२० \times ६ = ७२०; [\frac{७२०}{२} = ३६०] =$ तार 'प'

$१२० \times ७ = ८४०, [\frac{८४०}{२} = ४२०] =$ वेसुरा 'ध'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१२०×८ = ९६०; [$\frac{९६०}{२}$ = ४८०] = अति तार 'स'
१२०×९ = १०८०; [$\frac{१०८०}{२}$ = ५४०]; ($\frac{५४०}{२}$ = २७०) अति तार 'रे'

पहले हम आपको यह बतावें कि उपर्युक्त तालिका में स्थान-स्थान पर दो का भाग क्यों दिया गया है। तार 'स' की आन्दोलन संख्या ४८० होती है और मध्य 'स' से तार 'स' तक के स्वरों की ही आन्दोलन संख्यायें हम लोगों को साधारणतया याद रहती हैं। जब कहीं किसी स्वर की आन्दोलन संख्या ४८० से अधिक प्राप्त हो जाती है तब यह जानना कठिन हो जाता है कि यह कौन सा स्वर हो सकता है। यही मालूम करने के लिये हम उस आन्दोलन को जो ४८० से अधिक है २ से भाग देकर मध्य सप्तक में आते हैं और तब यह स्पष्ट हो जाता है कि यह अमुक स्वर की आन्दोलन संख्या है।

अब उपरोक्त तालिका को ध्यान से देखिये तो आपको पता चलेगा कि विभिन्न सप्तकों को मिला कर केवल स, रे, ग, प, और एक बेसुरा 'ध' तानपूरे के षड़ज से उत्पन्न होते हैं जो 'स' के सहायक नाद हैं। अब किसी भी स्वर का सहायक नाद मालूम करने के लिये मैं एक साधारण उपाय बतलाता हूँ। जिस स्वर का सहायक नाद आपको मालूम करना हो उपरोक्त 'स, रे ग, प' के 'स' को वही स्वर मानकर आगे गाइये और जो स्वर आपको प्राप्त हो वही उस स्वर के सहायक नाद हुये। जैसे आपको 'प' का सहायक नाद मालूम करना है तो 'स, रे, ग, प, के 'स' को 'प' मानकर आगे गाइये और जो स्वर आपको प्राप्त हो वही उस स्वर के सहायक नाद हुये। जैसे आप को 'प' का सहायक नाद मालूम करना है तो 'स, रे, ग, प, के 'स' को 'प' मानकर आगे गाइये तो 'स' 'प', 'रे' 'ध', 'ग' 'नी', और 'प' रे हो जायेगा। इस प्रकार प के सहायक नाद 'प, ध, नी, रे,' हुये। कभी-कभी आप तानपूरे के पञ्चम को मन्द्र 'नी' से मिलाते हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब देखिये इस 'नी' का सहायक नाद मालूम करने के लिये वही विधि प्रयोग में लाइये तो 'स, रे, ग, प, नी, रे, ग, म' हो जायेंगे और वही मन्द्र 'नी' से सहायक नाद होंगे।

अब आपने देख लिया होगा कि तानपूरे के षड्ज से 'स' 'रे' 'ग' 'प' और पंचम से प, ध, नी, रे स्वर प्राप्त हुये कि तानपूरे में मध्यम निकलता है कि नहीं या तार मध्यम से मिलाने के लिये उचित विधि क्या हैं, तो तानपूरे के पचम के तार को उस समय तक ढीला कीजिये तब तक कि पंचम का सहायक नाद ऋषभ जो स्वयं सुनाई देता रहता है 'स' से न मिल जाय। जब पंचम वा ऋषभ की ध्वनि 'स' में परिवर्त्तन हो जायेगी तो पंचम का तार ठीक एक स्वर नीचा हो जायेगा और तब पंचम मध्यम हो जायेगा। इस प्रकार तानपूरे से सहायक नादों के आधार पर सातों स्वर ('स' 'रे' 'ग' 'म' 'प' 'ध' 'नी' 'स') उपलब्ध हो जायेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वी थाट का विवेचनात्मक अध्ययन

पूर्वी थाट*

आधुनिक पूर्वी थाट ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन राग है। प्राचीन ग्रंथों में इसके रामप्रिया, कामवर्धिनी, तथा पूर्वी इत्यादि नाम मिलते हैं। परन्तु सङ्गीत चूँकि जनरुचि से परिवर्तित होता रहता है इसलिये सरगमानुसार प्राचीन तथा आधुनिक रागों के स्वरों तथा नामों में आंशिक अन्तर हो गया है। आधुनिक सङ्गीत हिन्दू तथा मुस्लिम दो संस्कृतियों के सम्मिश्रण का नवीन रूप है जिसमें ११वीं शताब्दी से ही परिवर्तन आरम्भ हो गया था। शास्त्रोक्त ग्रन्थों की कमी भी एक महान कारण है। प्रथम सबसे महत्वपूर्ण बात जो हमें दिखाई पड़ती है वह यह है कि प्राचीन तथा मध्यकालीन सङ्गीत कलाकारों में ऐसा कोई भी नहीं हुआ जो अपने समय के सङ्गीत की रूप-रेखा पर अपने स्पष्ट विचार व्यक्त किये हो— इतिहासों के देखने से पता चलता है कि महान गायक अपढ़ होने के कारण अच्छे शास्त्रकार नहीं थे और न शास्त्रकार अच्छे गायक ही थे। दूसरी बात परिवर्तनशीलता की यह दिखाई पड़ती है कि अधिकांश मुस्लिम गायक हिन्दी तथा संस्कृत दोनों से अनभिज्ञ थे। अस्तु, उनके लिये शास्त्रोक्त मर्यादा का कोई अर्थ नहीं था। तीसरी बात यह कि सङ्गीत प्राचीन काल से ही परम्परागत रहा है, गुरु

*रागवर्णन तभा उनके स्वरूप की रूपरेखा वर्तमान प्रचलन के अनुसार अभिनव रागमंजरी, राग चन्द्रिकासार, राग कल्पद्रुमांकर, सगीत सुधाकर आदि ग्रंथों के मतानुसार दिया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वार प्राप्त ज्ञान ही उनका सर्वस्व था इसके बदलने के लिये वे तैयार नहीं थे। अनेकों मत मतान्तर प्राचीन काल से ही मतभेद की पुष्टि करते आ रहे हैं। आज भी गायकों तथा वादकों में अपने घराने की शैली के लिये पर्याप्त आदर है। वह अपने रागों को दूसरे के कहने पर बदलने को तैयार नहीं। चौथी बात यह है कि सङ्गीत का प्रधान गुण रंजकता, के अनुसार राग वैचित्र्य के लिए विवादी स्वरों का प्रयोग रागों में विभिन्न गायकों तथा वादकों द्वारा होता ही रहा है जिसके अनुसार शास्त्र तथा क्रियात्मक में आंशिक अन्तर होना स्वाभाविक था जिसको शास्त्र नियमबद्ध करने में असमर्थ थे—क्योंकि शुद्धता की मर्यादा का पालन उनका प्रथम कार्य था। हमारी उत्तरी तथा दक्षिणी पद्धतियों का महान् आधार ग्रन्थ सङ्गीत रत्नाकर जिसके कोष में हमारे प्राचीन सङ्गीत का भण्डार बन्द पड़ा है, कुञ्जी खो जाने के कारण आजकल कोई भी सङ्गीत ग्रंथकार उसे नहीं समझ सका क्योंकि रत्नाकर का स्वराध्याय क्या था? आजकल यह नहीं जाना जा सका। उसने अपने समय के सभी प्रचलित रागों को राग रागांग, भाषांग क्रियांग तथा उपांग इत्यादि वर्णों में विभाजित कर दिया है। रत्नाकर के पहले भरत तथा मतङ्ग आदि के समय में व्यक्तियों और जातियों का गायन प्रचलित था जिसके अन्तर्गत उस समय के रागों का विभाजन किया गया था। मध्यकाल के उत्तरार्ध में शास्त्रकारों की दृष्टि जन्य-जनक प्रणाली पर केन्द्रित हुई। जिसके अन्तर्गत उन्होंने अपने समय के प्रचलित रागों का वर्गीकरण किया। परन्तु परिवर्तनशील सङ्गीत के पुष्पों का अपवाद आजकल जन्य-जनक की व्यवस्था को सुदृढ़ नहीं होने दिया है। सम्पूर्ण भारत में वर्तमान थाट प्रणाली के प्रतिष्ठित होने पर भी अभी इस व्यवस्था के आगे प्रश्न खड़े ही हैं। वह यह कि ऐसे अधिकांश राग जिनमें थाट में लगने वाले स्वरों के अतिरिक्त अन्य विवादी स्वर भी राग वाचक स्वर के रूप में प्रयुक्त होते हैं, किस वर्ग में रक्खे जाँय? केवल इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तर्क के समाधान नहीं होता है कि वे राग थाट व्यवस्था के अपवाद हैं या उनमें विवादी के नाते राग सौन्दर्य के लिये अन्य स्वरों का प्रयोग दिया गया है।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर हमें पूर्वी थाट तथा उसके वर्गीय रागों की रूप-रेखा पर विचार करना होगा। साथ ही साथ थाट व्यवस्था के सम्पूर्ण नियमों को भी समझना होगा।

निम्नांकित विचारों पर दृष्टिपात करने से हमें जो विदित होता है :—

(१) यह कि पूर्वी थाट, जिसमें आजकल दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है, केवल एक तीव्र मध्यम ही थाट व्यवस्था के अन्तर्गत आती है।

(२) अधिकांश पूर्वी थाट के रागों में श्री अंग की प्रधानता है जो कदाचित पूर्वी थाट से भी प्राचीन है। क्योंकि राग-रागिनी व्यवस्था में 'श्री' स्वयं एक थाट के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

(३) अधिकांश विद्वानों का मत है कि आधुनिक पूर्वी थाट ही प्राचीन दीपक थाट है जो ग्रन्थों के निर्माण काल तक नष्ट हो गया था।

(४) पूर्वी थाट के वर्गीय अधिकांश रागों में भैरव का उपयोग किया गया है जिसका रागों के सायं और प्रातर्गेयता से निकट का सम्बन्ध है। भैरव तथा पूर्वी दोनों थाट आधुनिक थाट व्यवस्था में प्रातः तथा सायंगेय रागों की राग रचना तथा निर्धारित समय में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

(५) दोनों में केवल मध्यम के विभिन्न प्रयोग से अनेकों राग निर्मित हो सकते हैं जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण आज के प्रचलित रागों में दिखाई पड़ता है।

(६) पूर्वी थाट के कुछ रागों को लोग आज भी मारवा थाट के अन्तर्गत मानते हैं। कुछ अन्य रागों में ललिताङ्ग भी स्पष्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिखाई पड़ता है जिसका रागों के प्राचीन प्रचलित स्वरूप से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा जो आज परिवर्तित होते-होते अपवाद बन गया है।

(७) मध्यकालीन सभी ग्रन्थकारों (लोचन कवि, रामामात्य, पुण्डरीक विठ्ठल, सोमनाथ, दामोदर मिश्र, अहोबल, हृदयनारायण देव, भावभट्ट, व्यंकटमुखी, (श्री निवास) ने जन्य-जनक (थाट) व्यवस्था पर ही अपने समसामयिक रागों का वर्गीकरण किया है जिनमें राग-स्वरूपों के विषय में आंशिक मतभेद है, और जिसका प्रधान कारण यह है कि मध्यकाल में पेशेवर संगीतज्ञों के घरानों की गायन-शैलियों में पर्याप्त मतभेद था जिसकी जड़ प्राचीनकाल से ही जम गई।

(८) प्राचीनकाल से ही रागों के निर्माण में, वादी, सम्वादी, वर्ज्या-वर्ज्य स्वर, रागांग, विवादी स्वर, कुछ रागों का मिश्रण, तथा विभिन्न स्वर-समुदाय द्वारा स्वरों की ऊँचाई-निचाई में स्वाभाविक विचित्रता इत्यादि बातों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है जो परम्परागत आज तक चला आ रहा है और विभिन्न मतों द्वारा मान्य है। परन्तु शास्त्रों ने केवल १२, १४ स्वरों के आधार पर सम्पूर्ण प्रचलित रागों का मुन्डन-संस्करण किया है जो झगड़े के लिये पर्याप्त है। १२ स्वरों के अतिरिक्त शेष दस श्रुतियों के प्रयोग को केवल अच्छी परम्परा के संगीतज्ञ ही जानते हैं। क्योंकि भारतीय परम्परा के अधिकांश समप्रकृतिक रागों में लगने वाले स्वरों की उच्चारण शैली में विचित्रता का यथेष्ट स्थान है जिसके अभाव में राग अपने विशिष्ट प्रभाव से अलग हो जाता है।

उपरोक्त नियमों के अन्तर्गत आधुनिक पूर्वी थाट तथा उसके वर्गीय रागों की रूप-रेखा रागों के स्वरूप जानने में पर्याप्त सहायता प्राप्त होगी। पूर्वी थाट से सभी राग भारतीय सङ्गीत के अमूल्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुष्प हैं जो विभिन्न समयों में विभिन्न कुशल कलाकारों द्वार विकसित हुये, जिनमें शान्त और करुण रसों के अन्तर्गत रसों तथा भावों-विभावों का आविर्भाव होता है।

पूर्वी थाट के रागों का तुलनात्मक अध्ययन

(१) पूर्वी

पूर्वी आश्रय राग है जिसमें रिषभ, धैवत, कोमल तथा दोनों मध्यमों का प्रयोग रागवाचक माना जाता है। शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। ग नि का सम्वाद सायंगेयता की निशानी है जो उसे संधिप्रकाश रागों के वर्ग में ले जाता है। 'नि सा रे गा, ग म, म प, ग म रे म ग, म, ग, रे सा, स्वर समुदाय राग वाचक है। पूर्वी के स्वरों में 'ग म—ग, नि, सा रे ग', स्वर समुदाय पूर्वी के रागांग में एक पूरक का काम करता है जिससे स्थायी अङ्ग का विकास होता है।

'म ग, म ध म, सां, सां, नि रें सां रें, नि, ध, प, म प ग म—ग, रे म ग, म ध नि, रें नि ध प, ध म प ग म--ग, रे ग, म, ग, रें,

नोट :—प्राचीन पूर्वी केवल तीव्र मध्यम की थी, जिसे कुछ लोग दीपक थाट कहते थे। कदाचित आधुनिक पूरिया-धनाश्री प्राचीन पूर्वी रहा हो; जिसमें मतभेद है। 'नि रे ग म ध नि सां का प्रयोग अधिक किया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सा, नि, सा रे ग, म ध सां ।' अन्तरा का रागांग स्वरूप है । नि, ग, प, स्वर न्यास स्वर हैं ।

(२) पूरिया-धनाश्री

पूर्वी मेल से उत्पन्न सम्पूर्ण जाति का वक्र राग वाचक माना जाता है, जों इसके उत्तरांग प्रधानता की सूचना देता है । 'रे ग प, ध म ग, म रे, ग रे सा रे ग प, म ध --म --म ग, म ध नि, रें नि ध प, ध --म म ग, म रे ग प, ध, म, ग, रे सा' स्वर संगतियाँ राग वाचक हैं, जिनमें ग, प, सा न्यास स्वर हैं । इस राग में पूरिया तथा धनाश्री दोनों रागों का मिश्रण हुआ है । जिसका अर्थ यह है कि इसको पूरिया और धनाश्री दोनों अंगों पूर्वी की पृष्ठ भूमि में गाना चाहिये तभी राग का सर्वाङ्ग प्रदर्शन होगा । ग तथा निषाद पूरिया अंग के न्यास स्वर हैं और 'ग प' स्वर संगीत धनाश्री अंग की खास निशानी है जो पूरिया-धनाश्री को पूर्वी तथा उसके समप्रकृतिक रागों से स्वतन्त्र रखता है। अन्तरा पूर्वी सदृश्य ही है जो शुद्ध मध्यम के अभाव में पूर्वी से अलग रहता है । सायंकालीन राग है ।

(३) बसन्त

यह पूर्वी भैरव जन्य एक औडव-सम्पूर्ण जाति का मौसिमी ऋतु राग है जिसमें सां प सम्वाद होने के कारण उत्तरांग की प्रधानता रहती है । आरोह में प तथा नि वर्ज्य होते हैं परन्तु उनका वक्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

| नि|

प्रदर्शन कभी-कभी होता है। "ग म ध सां, म ध रें, सां, नि ध प,

| ग| | |

प (प) म ग म, ग, म, ग, रे सा रे ग, म ध सां" स्वर-संगतियाँ राग वाचक हैं। प्रचार में कहीं-कहीं आरोह में शुद्ध मध्यम का अन्य प्रदर्शन राग वैचित्र्य के लिये किया जाता है जो आज राग वाचक के रूप में माना जाने लगा है।

| |

यथा :—नि सा म, म म ग, म ध सां,नि रें सां, रें नि ध प,

| ग| | ध | | ध |

(प) म ग म, म, नि—नि, म ग, म —ग, म ग, रे सा, ग,

| | | ग|

म ध रें, सां, नि रें गं रें सां, म ध रें सां नि ध प, म ग म, ग,

|

म ग रे सा, सा म, बसन्त ऋतु सार्वकालिक तथा राग समय अनुसार १२ बजे रात तक गाया जा सकता है। बसन्त का एक प्रकार शुद्ध धैवत का प्रचलित है परन्तु मारवाङ्ग होने के कारण पूर्वी थाट के

| ग|

अन्तर्गत नहीं आता। म ग म, ग स्वर संगीत तथा अल्प उच्चारण राग वैचित्र्य के लिये आवश्यक है।

(४) परज

यह पूर्वी थाट का भैरवाङ्ग स्वरूप वाला उत्तरांग प्रधान राग है जिसमें सां प सम्वाद है तथा निषाद पर न्यास राग वैचित्र्य के लिये आवश्यक अंग माना जाता है। सां, नि, प, ग न्यास स्वर हैं। गेय समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है जो इसके परमेल प्रवेशक होने में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहायक है। इसका अस्थायी आरम्भ प्रायः भैरव अंग से होता है और अवरोह तो बिलकुल भैरवाङ्ग होता है। म ध नि, सां रें सां, नि ध नि ध प, ग म ग, ग म प प म ग, म ग रे सा, नि़ सा ग, म ध नि सां रें सां, रें नि सां, नि ध नि, सां, ध प, ग म ग, ग म म म ग, रे सा, नि़ सा ग म प ध प, ध (म), ध नी, सां रें सां, रें नि सां, नि ध प, ग म ग। तार षड़ज बारम्बार चमकता रहता है। सां, ध प, कालिङ्गड़ा जैसा, म ध नि सां, पूर्वी तथा ग म प प म ग म ग रे सा, भैरव और नि़ सा ग म प ध प, भी कालिङ्गड़ा अंग का होता है। अस्तु परज पूर्वी मेल का एक भैरवाङ्ग प्रकार है— जिसका उत्तरांग बसन्त से मिलता है वह भी आरोह में। निषाद के प्रयोग से परज बसंन्त से अलग हो जाता है। बसन्त में सां नि ध प मींड द्वारा लिया जाता है परन्तु परज में कालिङ्गड़ा अंग का प्रदर्शित होता है दोनों मध्यमों का प्रयोग इसको भैरव अंग से बचाता है।

(५) श्री

यह एक अत्यन्त प्राचीन राग है जिसका वर्णन मध्यकालीन ग्रंथों में पाया जाता है। इसकी जाति औड़व सम्पूर्ण है क्योंकि आरोह में गन्धार तथा धैवत वर्ज्य होते हैं। कभी-कभी इन स्वरों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का वक्र प्रयोग किया जाता है। श्री की विशेषता स्वरों की प्रौढ़ता के साथ है—रिषभ तथा निषाद का प्रौढ़ उच्चारण राग-वाचक होता है। रे—प सम्वाद है जो इसके सायंगेयता का सूचक है। यह एक संधि-प्रकाश राग है। पूर्वी थाट के प्रचलित अप्रचलित अधिकांश रागों में श्री अंग का प्रादुर्भाव देखा जाता है जिसके अनुसार इसकी प्राचीनता और सार्वभौमिकता स्वयं सिद्ध हो जाती है। रे, प, नि

स्वर न्यास के काम में आते हैं। 'नि़ सा रे, ग रे, म़ प, म, ग, रे,

ग । म
प, म ध म, ग, रे, म प नि, ध प, म ग रे, ग रे म प ध, म,

ग, रे, रें नि ध प, म प ध, म, ग, रे, ग, रे, सा, नि़ सा म प, नि

ग । ग म ।
सां रें, रें, मं ग रें, रें सां, नि सां रें, नि ध प, ध, म ग रे, ग रे सा'। स्वर समुदाय राग सूचक स्वर समुदाय हैं। सीधा सरल रूप है—उच्चारण की विशेषता से रिषभ का ऊँचा स्थान राग वैचित्र्य के लिये आवश्यक अंग माना जाता है।

(६) गौरी

पूर्वी थाट का एक प्रकार है जिसके आरोह में ग, नि वर्ज्य है और अवरोह सम्पूर्ण है। रिषभ-पंचम सम्वाद होने के कारण श्री अंग स्वाभाविक ही है। सायंगेय राग है। श्री अंग के साथ मन्द्र में नि़ पूरिया अंग की स्वर संगति राग वाचक होता है। कुछ लोगों के मत से आरोह में स्वल्प धैवत का प्रयोग स्पष्टता के लिए किया जाता है। कुछ लोग प—रे संवाद मानकर गौरी को श्री से अलग करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का प्रयास करते हैं। गौरी में कुछ गीत दो मध्यम वाले प्राप्त होते हैं जिसमें शुद्ध मध्यम का प्रयोग किसी परम्परा द्वारा किया गया होगा या राग वैचित्र्य के लिये भी, जो आगे चलकर रूढ़ि बन गया या गौरी का एक दूसरा प्रकार माना जाने लगा। दो मध्यम वाली गौरी में ललितांग की छाया स्पष्ट होती है।

यथा :—सा नि़ ध नि़, रे ग रे म ग रे, सा रे नि़, सा, म, म म ग म रे ग, म ध प म, म म ग, रें ग रे, म ग रे सा रें नि़, सा। शेष स्वरूप तीव्र मध्यम वाली गौरी का ही रहता है। गौरी के राग वाचक स्वर :—सा नि़ ध नि़, रे ग रे, म ग रे सा रे नि़, सा, म ध़ म ध़ नि़, सा, रे, ग रे ग रे, ग रे सा, सा प प, म ध म ग रे, रे ग म ग रे सा म ध म ध नि, सां, सां, सां सां रें रें सां, नि, नि रें गं म गं रें नि, सां, सां, सां सां रें नि ध प, नि ध प, म म ध नि (म) म ग, रे, म ग रे, सा, सा सा प प, प म ध म ग रे, म ग रे सा नि, रें ग रें म, ग रें सा रें नि़, सा। प्रस्तुत स्वर समुदायों में निषाद का प्रयोग बहुत विचित्रता से किया गया है जो गौरी की अपनी विशेषता है। गौरी का सर्वाङ्ग एक धुन जैसा प्रतीत होता है। जिसका प्रचलन सर्वसाधारण तक में है। इस राग का विस्तार मध्य तथा मन्द्र सप्तकों में आर्थक होता है। प्रचार में गौरी का दोनों मध्यमों वाला प्रकार आर्थक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गौरी का एक तीसरा प्रकार भी कहीं-कहीं सुनाई पड़ता है जिसके आरोह में धैवत को लेकर श्री का विस्तार किया जाता है जो मध्य और तार सप्तकों में होता है। यथा :—प, म ग, रें ग, रे सा, म ध नि, सां रे, नि ध प, प म ग, रे रे ग, म ध नि सां रें, रें नि ध, नि ध प, ध, प म ध, प म ग, रें ग, म ध, नि सां रें, नि ध प, प म ग, रे ग, रे सा परन्तु इस स्वर विस्तार में गौरी अंग का सर्वथा अभाव है इसीलिये यह अप्रचलित प्रकार सा हो गया है। श्री के पोषक नियमों की अवहेलना में गौरी का यह प्रकार बना होगा जिसमें धैवत पर न्यास किया गया है।

(७) त्रिवेणी

पूर्वी मेल जनित पाड़व जाति का अवरोहांग प्रधान राग है जिसमें मध्यम वर्ज्य होता है। रे—प सम्वाद होने से ग—प स्वर संगति तथा श्री अंग की प्रधानता हो जाती है सायंगेय राग है जिसका वर्णन प्राचीन अधिकांश ग्रन्थों में मिलता है और उस समय का प्रचलित रूप भी। रें सा, प गा रे, सा, सा प, ध प सां, नि ध प, ग प, प ग रें प रें रें ग रें, सा रे, ग प, प ग रें, ध प, प ग रे, नि ध प, ध प ग रे, रें सां, नि ध प, ग प ध प, प ग रे, ग रे सा, रें सा, प। स्वर समुदाय राग वाचक हैं। अन्तरा अंग—प प ग रे, ग प सां, रें रें, सां, रें गं रें सां, रें नि ध नि ध प, प ध प, ग प ध, नि ध, रें नि ध प, ग प ग रे, रें सां,। भैरव थाट के विभास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से वादी तथा श्री अंग की प्रधानता से अलग हो जाता है—निषाद का प्रयोग भी राग वाचक अर्थ में आता है। दूसरे विभास उत्तराङ्ग प्रधान है।

(८) टंकी या श्री टंक

पूर्वी मेल जनित टंकी एक सम्पूर्ण जाति का राग है जिसमें प—रे सम्वाद है जो श्री अंग से गाया है। कुछ लोगों के मत से इसमें मध्यम वर्ज्य होना चाहिये परन्तु इस प्रकार में त्रिवेणी की छाया अवश्य आवेगी जिसको सम्वाद द्वारा अलग किया जा सकता है। टंकी में मध्यम का अल्प प्रयोग ही वाँछित है। त्रिवेणी के समान यह भी एक अत्यन्त प्राचीन राग है जिसका वर्णन मध्यकालीन सभी ग्रंथों में प्राप्त है।

राग का उठाव या चलन इस प्रकार होगा :—ग, रे सा, रे सा, ग प, ध प, सां, ध प, नि ध प, म ग प, रे ग रे सा, रे प, ग प, प ग, रे सा ग रे, सा प, ध प म ग रे, सा, रे ग प, नि ध प ग रे, ग प, ध प, ग प, रें ग प, सा रे सा प, नि ध प, सां, नि ध प, रें नि ध प, ग प, रे ग प, गं रे सां, रे नि ध प, प म ध, ध प म ग, रे ग प, म ग रे, प, ग रें, ग रे सा। अन्तरा ग, ग प, ध प, सां, रे सां, नि रें सां, गं रें सां, सां रें गं पं, गं रें, गं रें सां, नि सां रें, नि ध, प, रे ग प ध, रें नि ध प, म ध, ग प, प ग रें, रें सां,।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(९) मारवी

पूर्वी जनित प्रकार है जिसके आरोह में निषाद तथा अवरोह में धैवत दुर्बल है इस लिये जाति षाड़व मानी जाती है 'रें—प' सम्वाद के सायंगेयत्व तथा श्री अंग की प्रधानता स्वाभाविक ही है। ग, प और नि पर न्यास वैचित्र्यदायक है। यह एक स्वतन्त्र तथा अप्रसिद्ध राग है प्राचीन ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता परन्तु आधुनिक प्रचलित में महान अन्तर हो गया है। इस राग में बसन्त तथा श्री अंग का सम्मिश्रण मालूम होता है। ग—प और नि प तथा सा—प तक मींड का प्रदर्शन राग वाचक माना गया है।

नि। नि म

उठाव—सां प ग, पगरेसा, म ध सां, रें निप, ग, पग रे

ध। ग ध। नि म ।

सा म ध सां। चलन रे ग, --म ध सां, रेंनिप, निप गरे, म

म ध। नि । ।

गरेसा, सा ग, म ध रें सां, सां, नि ध नि प, म ग, म ग रे

म ध। नि। नि ध। नि

सा, रें ग, म ध सां, म ध रें नि म ध सां, रें सां। इस राग में श्री अंग के साथ मीड़ों का प्रयोग अधिक होता है तथा कहीं-कहीं कणों का विचित्र प्रयोग राग रंजक ह।ता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१०) त्रिभाम

यह पूर्वी थाट का एक अप्रचलित राग है। इसके भैरव तथा मारवा जनित प्रकार भी प्रचार में हैं। सम्पूर्ण जाति का होते हुए भी मध्यम और निषाद की दुर्बलता राग वाचक मानी गई है। ध—रें सम्वाद होने के कारण इसकी उत्तराङ्गता तथा श्री अंग सामने आ जाता है। इसकी सायंगेयता दूर करने के लिए कुछ गायक इसके अवरोह में तीव्र मध्यम का अल्प प्रयोग करते हैं। अवरोह में निषाद लिया जाता है। ध—रे सम्वाद तथा पंचम पर विश्रान्ति से यह राग अधिक स्पष्ट होता है। सा, प ग, तथा ध विश्रान्ति स्थान हैं। दूसरे मत से यह भैरवांग माना जाता है।

सा ध, प, म प ध, प, ग प ग रे सा, सा रे सा, ग प, म ध प, ध सां, ध नि ध प, ग प ध प, ग रे सा, ग रे सा, प ग प रे सा, सा रे ग प, म ध नि ध प, ध सां, ध प, ग प ध नि ध प, ध प ग रे ग प, ध प ग रे सा पग, पध, धप, सां, रें सां, ध नि ध प, प ध सां, रें नि ध प, ध सां रें गं रें सां, रें नि ध प, ध सां, रें सां नि, ध नि ध प, म ध नि ध प, ग म ध सां रें नि ध प, ध प ग, सां ध प, ध नि ध प, ग म ध प, ग रे सा इन स्वर समुदायों द्वारा राग का विस्तार राग वाचक होता है।

(११) रेवा

पूर्वी जनित जिसमें मध्यम तथा निषाद वर्ज्य होने के कारण औड़व जाति मानी जाती है। मध्यम तथा धैवत के वर्ज्य होने से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनका स्वरूप भैरव थाट के विभास से मिलता जुलता है परन्तु वादी स्वर की पृथक्ता तथा पूर्वाङ्ग की प्रधानता के कारण वह विभास से अलग हो जाता है। 'ग प' स्वर संगति राग वाचक मानी जाती है। स्वर गंधार तथा सम्वादी धैवत है।

चलन—ग, रे ग; प ग, रे सा, सा रे ग, प, प ध, प ग, सा रे ग, रे ग, सां रें सां, ध प, ग, प ग, रे सा। सा रे ग, प ग रे ग, रे ग, सा रे ग, प ग, ध प ग, रे रें ग, प ध प ग, रें ग, रे सा, ध ग रे, प ग, ध प ग, सां, ध प ग, रे ग, प रें ग, म ध ग प रें ग, सा रे सा।

जैत श्री

पूर्वी मेल जनित पूर्ण प्रचलित औड़व सम्पूर्ण जाति का राग है। आरोह में रिषभ तथा धैवत वर्ज्य है। वादी स्वर गन्धार तथा सम्वादी निषाद है। सायंगेय राग है। कुछ प—स सम्वाद मानते हैं। 'म ग म, ग, स्वर संगति इस राग में रक्तिदायक होती है। कुछ लोग इसे मारवा थाट का मानते हैं, परन्तु प्रचार में पूर्वी थाट का ही अधिक है। संगीत पारिजात तथा राग विबोध में रिषभ—धैवत दुर्बल प्रकार जैत श्री माना गया है। हृदयकौतुत ने इसको भैरव थाट में माना है। इस राग में धनाश्री अंग का समावेश होता है तथा ग से सा तक मींड का प्रयोग राग वैचित्र्य की दृष्टि के ग्राह्य है। पञ्चम से गन्धार तक मींड का प्रयोंग होता है।

म

उठाव—नि़ सा, ग प, म ध प, म ग, ध प, म ग, म ग रे सा,।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सा, ग प म, ग म ग रे सा नि़ सा ग प, म प ध प, नि ध प,

म ग, म ग, रे सा, । प प, म ग सा ग प, म ग म ग, रे, सा । प,

ध प, सां, सां प, नि, सां, गं रें सां, रें नि ध प, म प, रें सां, नि ध

प, प, मग, म ग रे सा ।

(१३) दीपक

पूर्वी मेल जनित यह एक अत्यन्त प्राचीन राग है जिसको सर्वसाधारण तक जानता है। परन्तु ग्रन्थों के निर्माण काल तक यह लुप्त प्राय हो गया था। इसके स्वरूप विषय में मध्यकाल से ही मतभेद दिखाई पड़ता है इस राग के विषय में अनेक मनोरञ्जक संख्यायें हैं। आज भी इस राग के विषय में पर्याप्त मत-भेद है जिसके अनुसार इसके दो या तीन स्वरूप प्रयोग में है। परन्तु वे सभी अप्रचलित हैं।

इस राग के नाम के जितने गीत उपलब्ध है उनमें एक पूर्वी थाट से उत्पन्न होने वाला प्रकार है जिसके आरोह में ऋषभ तथा अवरोह में निषाद वर्ज्य होता है। षड्ज-पंचम सम्वाद है, कुछ लोग प—स सम्वाद मानते हैं। सायंगेय राग है। कुछ लोग इसको सम्पूर्ण मानते हैं, उनका कहना है कि दीपक ही प्राचीन पूर्वी थाट था। इसका प्रकार कल्याण थाट से उत्पन्न निषाद वर्जित तथा तीसरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार विलावल थाट वाला भी दोनों निषाद से कहीं-कहीं गाया जाता है । 'ग प' स्वर संगति से श्री अंग की छाया आती है । राग वाचक स्वर समुदाय "सां,—प—ग प ग रे सा सा ग प, म ध प, ग म ध प सां, नि सां रें सं, प, गप ग रे सा ।" हैं । रे सा, ग प ग रें सा, ग प, म धप- नि सां, नि रें सां प, नि रें सां गं, म गं रें सां, नि सां प, सा ग म ध प, सां रें सां, सां प ग, प ग रें सा । ग, मं ध प, सां, सां नि रें, सां, गं रें सां, नि सां प, म ध प, नि रें धां प, म ध प ग, प ग रे सा, ग, म ध प, सां, रें सां ।

(१४) हंसनारायणी

पूर्वी थाट जनित दक्षिणी पद्धति का षाड़व राग है । इसमें धैवत स्वर वर्ज्य है । कुछ लोग इसको मारवा थाट के अन्तर्गत मानते हैं । इसका स्वरूप सायंगेय रागों जैसा ही है । यह राग मन्द्र सप्तक में अधिक चलता है । राग दर्शक स्वर-समुदाय ग म प म, ग रे सा, नि़ रे नि़ प़ म़ ग़, नि रे ग म, रें ग रे सा । सा—प सम्बाद है । यह राग उत्तर संगीत पद्धति में एक अप्रचलित प्रकार, है । 'नि़ रें निं प़ म ग़, म़ प नि़, रेसा, स्वर संगीत रक्तिवर्धक है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चलनः—नि़ रें ग म, प म ग रें, ग म प म, ग रें सा, नि़ रें नि़ प़, म़ ग़, म़ प नि़, नि रें सा, नि़ रें ग, निं रें नि़ प़, नि रें ग न, ग म प न, ग रे ग रें सा।

(१५) मनोहर

यह पूर्वी थाट से उत्पन्न होने वाला एक अप्रसिद्ध राग स्वरूप है। इस राग का ग्रंथाधार नहीं प्राप्त है जिससे यह जाना जाता है कि आधुनिक राग है। ग—ध सम्वाद है। आरोह में पंचम वर्ज्य है और अवरोह में साधारणतः 'प म ग' का प्रयोग वर्ज्य है। श्री तथा बसन्त के योग से निर्मित साधारण चलन ध म ग रें, ग रें सा, म ध रें नि ध प, ग म ग रें सा,। म ध सां, रें सॉं, रें नि ध प, ध म ग रें, ग म ध रें, नि ध प, म ध सां, रें नि ध प, म ग, म ग, म, ग रें सा।

नोट—पूर्वी माल जनित कुछ और भी प्रचलित राग हैं परंतु वे आधुनिक निर्मित राग हैं, जिनकी रचना, भैरव, मारवा, तथा पूर्वी थाट के रागों के सम्मिश्रण से गायक तथा वादक करते जा रहे हैं। ठीक इसी प्रकार प्राचीन काल में भी विभिन्न मतावलम्बी गायकों तथा वादकों द्वारा पूर्व वर्णित पूर्वी मेल के अधिकांश राग विभिन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समयों में प्रतिष्ठित हुए जिनके राग-रूप में आज कुछ अन्तर हो गया है। पूर्व वर्णित रागों की सख्या में अधिकांश ऐसे हैं जिसमें कुछ थोड़ी क्रिया श्री अंग या भैरव अंग में करके राग बनाये गये से प्रतीत होते हैं। स्वतन्त्र स्वरूप ८ या १० रागों का है जिनका प्रचार आज अधिक है। रागों का प्रचलन उनके रंजक स्वरूप पर निर्भर करता है, वर्ना ग्रंथों की सम्पति या किसी कलाकार की जानकारी के लिये ही उपयोगी होते हैं। आज भी वह ही राग अधिक प्रचलित हैं जो लोकप्रिय अधिक हैं। उक्त, राग की सम्पूर्ण मर्यादा उसके सर्वाङ्ग के रंजकत्व पर निर्भर करती हैं।

निष्कर्ष यह निकलता है कि पूर्वी थाट के रागों में श्री अंग की प्रधानता अधिक दिखाई पड़ती है जो सबसे प्राचीन राग है। आधुनिक पूर्वी रुढ़िगत परम्परा द्वारा निर्मित हुये प्रतीत होती है क्योंकि श्री अंग के सभी प्रकारों में शुद्ध मध्यम का नितान्त अभाव है जिनका मध्यकालीन स्वरूप हमें प्राप्त होता है।

नोट—आधुनिक रागों के वर्गीकरण के लिये कुछ और थाटों की आवश्यकता प्रतीत होती है जैसे :—

(अ) दोनों गन्धार तथा दोनों निषाद वाले।

(ब) दोनों मध्यमों तथा दोनों धैवतों वाले।

(स) दोनों रिषभ तथा दोनों धैवतों वाले।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्रीय संगीत शिक्षा

भारतीय संगीत शिक्षा का इतिहास वैदिक काल से आरम्भ होता है। जिस प्रकार वेद अनादि और अपौरुषेय हैं उसी प्रकार संगीत भी अनादि काल से प्रचलित है। सङ्गीत मनुष्य का स्वाभाविक गुण है! चौरासी लक्ष योनियों में मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो सङ्गीत के भावों से ओत-प्रोत है। यही कारण है कि सङ्गीत का एक अलग वेद ही है जो सामवेद के नाम से प्रसिद्ध है।

वैदिक काल में सङ्गीत शिक्षा का विधान गुरु परम्परानुगत प्रणाली द्वारा हुआ करता था। उस समय स्वर, लय और ताल में वेद की ऋचाओं का गायन होता था। हृदय कण्ठ और तालु से निस्टत स्वरों का अभ्यास गुरुकुल में कराया जाता था और उसके बाद उदात्त, अनुदात्त और स्वरित आदि मात्राओं के ज्ञान के अनन्तर लय और ताल में संगीत का प्रदर्शन होता था। पौराणिक काल तक सामवेदीय संगीत की शिक्षा गुरु परम्परानुगत प्रणाली से ही दी जाती थी। किन्तु इस काल तक पहुँचते-पहुँचते सामवेदीय ऋचाओं के गायन के साथ-साथ संस्कृत के मधुर पदों का भी गायन होने लगा। उस समय मात्रा, लय और ताल की शैली में कोई भेद नहीं था किन्तु गीतों की शैलियों में पर्याप्त विकास हुआ। मानवीय विचारों और कल्पनाओं की अनेक-रूपता के फलस्वरूप संगीत में भी धीरे-धीरे अनेक रूपता आने लगी। और संगीत के प्रत्येक क्षेत्र में विशेष शिक्षा शैली का सूत्रपात भी हुआ।

पौराणिक काल की अन्तिम अवधि तक भरत-नाट्यम आदि संगीत ग्रंथों का भी प्रणयन हुआ जिसमें शिक्षण कला पर विशेष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाश डाला गया। शिक्षा विधि की इस अद्भुत शैली की अपनी निजी विशेषता है। आज भी भरत-नाट्यम् के सिद्धान्तों के आधार पर ही संगीत शिक्षा दी जा रही है। आठवीं शताब्दी तक भारतीय संगीत का स्वरूप शास्त्रीय था और गुरु परम्परानुगत प्रणाली द्वारा ही वह संगीत अवगत कराया जाता था। किन्तु विदेशियों के शासन के पश्चात् शास्त्रीय संगीत की शैली में विशेष परिवर्तन हुआ। शिक्षा पद्धति में भी पर्याप्त परिवर्तन हुआ। इस काल ने अनेक शैलियां को जन्म देकर शताब्दियों से प्रचलित शास्त्रीय संगीत के रूप में विशेष परिवतन कर दिया।

भारत की शास्त्रीय संगीत शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता हैं नियमों और सिद्धान्तों को विशेष महत्व देना। भारत की प्राचीन गायन शैली है ध्रुपद की गायकी। ध्रुपद गायन शैली बिना गुरु की क्रियात्मक सहायता के सम्भव नहीं है। स्वर-साधन के उपरान्त ध्रुपद की शिक्षा देने से विद्यार्थी के स्वरों में गम्भीरता, मधुरता और आकर्षण उत्पन्न होता था। और विभिन्न ध्रुपद प्रकृत रागों की व्यंजना सरलता से की जाती थी जों अत्यन्त आकर्षक और आह्लाद-दायिनी होती थी।

संगीत के प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि किसी भी गायन शैली की विशेषज्ञता के पूर्व शास्त्रीय संगीत की शिक्षा अत्यन्त अनिवार्य है। विदेशों में आज भारतीय सङ्गीत का जो नाम लिया जाता है वह उसकी शास्त्रीयता की ही देन है। जब तक शास्त्रीय ढङ्ग से सङ्गीत शिक्षा नहीं दी जायगी तब तक कोई भी विद्यार्थी सङ्गीत कला का सफल कलाकार नहीं बन सकता। जिस प्रकार गणित शास्त्र में कठिनतम प्रश्नों के समाधान के लिए प्रयत्न करने के पूर्व योग, शेष, गुणन और भाग इत्यादि मौलिक उपकरणों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ठुमरी, टप्पा, तराना, चतुरंग, गजल, भावगीत, लोकगीत और भजन इत्यादि जितनी सरल संगीत पद्धतियाँ हैं उनके अभ्यास और अनुशीलन के लिये वही छात्र उपयुक्त समझा जाना चाहिये जिसने शास्त्रीय सङ्गीत की प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की है।

आधुनिक शास्त्रीय सङ्गीत में तानों और आलापों को प्राधानता दी जाती है। और गीत के शब्दों और वाक्यांशों से स्पष्टीकरण पर बहुत कम गायक ध्यान देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो गायक का उद्देश्य सङ्गीत कला के द्वारा गीतों में निहित भावों की अभिव्यंजना नहीं है। अपितु कला प्रदर्शन मात्र है। वास्तव में सच्ची कला वही है जो भावों के प्रकाशन में अधिक सहायक सिद्ध हो। स्वरों का अभ्यास कर तानों और आलापों का प्रयोग इसीलिये किया जाता है कि जिससे भावों के प्रकाशन में अधिक सहायता मिले। बीच-बीच में अलापों और तानों के रोचक समूहों का प्रयोग करना अत्यन्त आकर्षक होता है। कुछ दिनों तक शास्त्रीय सङ्गीत जन-साधारण के हृदय को स्पर्श करने में सर्वथा असफल रहा, उसका एक मात्र कारण था भावाभिव्यक्ति का अभाव।

अतः आधुनिक शिक्षा प्रणाली जो गुरु परम्परा प्रणाली से कोसों दूर हो गई है उसमें उपर्युक्त संशोधन की अत्यन्त अपेक्षा है। युक्त दोष का मूल कारण यह है कि गुरु परम्परा का प्रचार अब बहुत कम है और स्वरलिपि पद्धतियों के अनुसार ही शिक्षा का विधान किया जा रहा है। यह किसी भी संगीतज्ञ को अमान्य न होगा कि स्वर-लिपियों द्वारा संगीत की कलात्मकता का वास्तविक दिग्दर्शन नहीं हो सकता। गुरु मुख द्वारा रसयुक्त स्वरों तथा गायक शैलियों का अनुकरण जितना प्रभावोत्पादक तथा ग्राह्य होता है उतना स्वर-लिपि पद्धतियों से नहीं। हाँ, स्वर लिपियों से समय तथा श्रम की बचत अवश्य होती है किन्तु कलात्मकता का सर्वथा अभाव सा रहता है। गुरु परम्परा प्रणाली और अधुनिक शिक्षा प्रणाली में गुण और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोष दोनों है। वर्तमान युग में हमें भावी शास्त्रीय संगीत शिक्षा का आधार ऐसा निर्धारित करना चाहिये जिससे उक्त दोनों प्रणालियों के गुणों का ही समन्वय हो।

भारत की शास्त्रीय संगीत शिक्षा भारतीय सङ्गीत के विभिन्न क्षेत्रों के छात्रों के लिये अनिवार्य होनी चाहिये। यदि पूर्ण नहीं तो प्रारम्भिक शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। इसके द्वारा स्वर, लय, ताल अधिक परिमार्जित हो जाते हैं जिसके फल स्वरूप गायक अल्प प्रयास से ही सङ्गीत की विभिन्न गीत शैलियो के प्रदर्शन में सफल होता है। इसी में भारतीय सङ्गीत की व्यापकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानव-जीवन में संगीत

संसार की समस्त ललित-कलाओं में सङ्गीत को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। कारण यह है कि यही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मनुष्य लौकिक तथा पारलौकि सुख तथा शान्ति की अनुभूति कर सकता है। मनीषियों ने मनुष्य के कल्याणकारी पदार्थों को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की संज्ञाओं में वर्गीकरण किया है। इन चारों पदार्थों की प्राप्ति तो संगीत द्वारा होती ही है परन्तु साथ-साथ उस परमानन्द-स्वरूप परमात्मा की भी प्राप्ति होती है जिसके समक्ष मोक्ष जैसे परमपद की भी अवहेलना की जाती है। नगर के संघर्षमय जीवन से मानसिक शिथिलता आ जाना स्वाभाविक है। शारीरिक कार्यक्रम के अनुसार निद्रा देवी का आवाहन किया जाता है परन्तु व्यर्थ हो जाता है। उस समय केवल सङ्गीत ही एक ऐसी औषध है जो मन के उद्वेग को शान्त कर पुनः शक्ति संचार कर, उसको कार्यरत कर देती है। योगी जन भौतिक-संग्राम से सन्यास लेकर संसार की जटिलता से परिपीड़ित होकर, मन को बुद्धि से प्रेरित कर आत्म चिन्तन के हेतु वन में कुटी बनाकर रहते हैं, परन्तु—मद्भक्तया यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारदः—के सिद्धान्त की अवहेलना नहीं कर सकते और बहुधा भजन कीर्तन के सुअवसरों पर उनको भी उसी भौतिक-तत्व-प्रधान समाज में आकर अपनी आत्मा को सन्तुष्ट करना पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सङ्गीत मानव-जीवन से संबद्ध एक अनूठा उपकारक तत्व है जो समाज-संगठन में तथा समष्टि-करण में अपना विशेष महत्व रखता है। सर्वाङ्ग सुन्दर होने पर परमानन्द-स्वरूप को प्राप्त होता है तभी योगी जन मोहित होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन के भावों को सफलतापूर्वक प्रदर्शित करने की शक्ति जिन अंशों में मनुष्य को प्राप्त है उतनी अन्य प्राणी को नहीं। परन्तु संगीत में उस प्रदर्शन को रोचक एवं मनोरंजक बना देने की दैवी प्रतिभा है। जन-साधारण परिस्थितियों के अनुरूप भाव-प्रदर्शन करता है जिसका आधार आन्तरिक अनुभूति होती है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य अपनी सामान्य दशा से उपराम होकर आवेशमय हो जाता है। संगीत में ऐसी विशेषता है जो मनुष्य को उसकी सामान्य दशा में लाकर, अतीत की आवेशमयी कृतियों की अनुभूति कराती है। बुद्धि तथा मन का संतुलन होता है। उस समय मनुष्य को सत्य असत्य का वास्तविक ज्ञान होता है और कर्म विशेष के प्रति तटस्थ होकर विचार कर पाता है। एक मनुष्य है—छोटी मछली के समान बड़ी का शिकार—उसको भवसागर में परिस्थितियों के थपेड़ों ने विचलित कर दिया, निराशा ने घेर लिया। बस एक ही मार्ग खुला है जहाँ सब ही को जाना है परन्तु इस मनुष्य को समय से पहले। कहीं से कानों में स्वर-लहरी गूँजती है :—इन्सान क्या जो ठोकरें नसीब की न सह सके, इन्सान क्या—हृदय की शिथिल गति को शक्ति प्राप्त हुई। मनुष्य अपनी सामान्य दशा को प्राप्त हुआ। प्रकाश-हीन नेत्रों में आशा की रेखा झलक उठी। वरदान प्राप्त हुआ अथवा जीवन-दान प्राप्त हुआ। यह है उस सरस्वती माँ की कृपा जो अन्य कला में नहीं है। चुपड़ी और दो-दो वाली कहावत है। परन्तु सब कुछ होता तभी है जब कि माँ की सेवा की जावे।

मनुष्य परिस्थितियों का दास है। जिस प्रकार विरोधी परिस्थितियों में मनुष्य जीवन से निराश हो जाता है उसी प्रकार आमोद-प्रमोद-मयी सुविधाओं में नर-पिशाच का रूप धारण कर सकता है और इतना स्वच्छन्द हो जाता है कि दूसरों के जीवन को अपने मन-बहलाव का खिलौना समझ खेलते-खेलते तोड़ डालता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस समय उसका कोई गुरु नहीं होता है। फिर 'सहानुभूति का अंकुर किस प्रकार उत्पन्न हो' समस्या हो जाती है। यदि उस समय कोई भी उपचार सिद्ध और सफल हो सकता है तो है वह केवल संगीत जो मनोवैज्ञानिक रूप से उस नर-पशु को जन-साधारण के स्तर तक ला सकता है। इस विषय में वनैले पशुओं का उदाहरण भी अनुपयुक्त न होगा। समय-कुसमय वनवासी जातियों को घोर जंगल में होकर जाना पड़ता है। वन-पशु कब और कहाँ घात लगाये बैठा होता है इसका ज्ञान किसी प्रकार नहीं हो सकता जबकि चारों ओर आच्छादित अंधकार होता है। पथिक केवल ऊँचे स्वरों में संगीत की तान छेड़ता चला जाता है। उस समय भयङ्कर से भयङ्कर पशु भी मंत्र-मुग्ध सा होकर अपने स्थान से विचलित नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि संगीत मनुष्य को ईश्वर की वह देन है जिसके द्वारा वह मानवी संसार में ही नहीं वरन् दानवी संसार में भी मानवता का विकास कर सकता है। श्रद्धा एवं तपस्या अपेक्षित है।

सामाजिक-प्राणी होने के नाते मनुष्य को अपने जीवन को सम्पन्न बनाने के हेतु मान पद प्रतिष्ठा की अभिरुचि स्वाभाविक होती है। यह आकाँक्षाएँ उच्च तथा अधिकारी वर्ग को प्रभावित करके तथा जन-साधारण को प्रसन्न करके फलीभूत हो सकती हैं। स्वर्गीय सहगल को जो स्थान भारत के हृदय-पटल पर प्राप्त है वह स्थान उसको अन्य किसी कार्य द्वारा कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता था। जिस समय सङ्गीत मर्मस्थल पर आघात करता है तो मनुष्य को अपनी मान-मर्यादा का ध्यान रहने पर भी उसकी चिन्ता नहीं रहती। परिणाम-स्वरूप उच्च श्रेणी के महापुरुषों को झुककर संगीतकार को गले लगाने में अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है। उसकी सेवा करना वे अपना परम धर्म समझने लगते हैं। उसको प्रसन्नचित्त देखने में अपनी सफलता अनुभव करते हैं। आखिर वे लोग चाहते क्या हैं जो इतना सर दर्द मोल लेते हैं। जीव ब्रह्म का अंश है जो परमानन्द-स्वरूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। सांसारिक बन्धनों में उसका दर्शन अनिवार्य भी है और दुर्लभ भी। परन्तु संगीत के द्वारा कुछ क्षणों के लिए वह सुलभता से प्राप्त हो जाता है। ऐसे परोपकारी पुजारियों को मान पद प्रतिष्ठा की कहीं कमी नहीं होती परन्तु फिर भी वे लोग इसमें बँध नहीं जाते। वे तो और दूसरों का भी उद्धार करते हैं। यह हैं संगीत का मानव जीवन से सम्बन्ध जो उसको परमधन सहज ही में प्राप्त करा देता है।

वास्तव में मानव-जीवन से संगीत का सम्बन्ध सनातन है जो मन और वाणी से परे अनुभव तथा आनन्द का विषय है। इसकी वास्तविकता को वही योगी जन जानते हैं जिनके संस्कारों में इसका बीजारोपण हो चुका हो। तत्पश्चात् जन्मान्तरीय तपस्या में उसने कल्प वृक्ष का रूप धारण कर लिया हो और सिद्ध और साधकों को चारों पदार्थ वरदान रूप प्रदान करता रहता हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीतज्ञ का दायित्व

मधु-मक्षिकां अनेक कष्ट सहन कर पुष्पों का रस भोग करती है और दान करती है मधु-अमृत-जो रोगियों को स्वास्थ्य, पौरुषहीन को पुरुषार्थ एवं स्वस्थ मनुष्यों को बल-बुद्धि तथा दीर्घ-आयु प्रदान करता है। संगीतज्ञ को भी संगीत-रूपी पुष्प-रस प्राप्त करने में अगणित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। निरन्तर तपस्या करने के पश्चात् देवताओं ने माँ सरस्वती को प्रसन्न करके संगीत जैसे अमूल्य रत्न को प्राप्त किया, उस विषय में ग्रन्थ लिखे और प्रचार के हर साधन जुटाये और प्रचार किया। इसका परिणाम यह हुआ कि यह शारीरिक तथा मानसिक रोगों के निवारण करने का अनूठा साधन सिद्ध हुआ। और समाज को सुन्दर और सुदृढ़ बनाने का अलौकिक साधन बन गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि संगीतज्ञ का सर्वश्रेष्ठ दायित्व है कि वह संगीत का इस प्रकार प्रतिपादन करे जिससे कि जन साधारण का, समाज का और प्राणी-वर्ग का कल्याण हो क्योंकि इसकी उत्पत्ति का एक मात्र कारण कल्याण की भावना ही है।

इस महान् भार को वहन करने के हेतु संगीतज्ञ को अन्य साधनों अथवा उपकरणों का आधार लेना अवश्यम्भावी हो जाता है जिनका महत्व ही संगीत का अथवा संगीतज्ञ के जीवन का पोषक अथवा शोषक बन जाता है। संगीतज्ञ के आध्यात्मिक, नैतिक तथा सामाजिक जीवन के उदाहरणों द्वारा अन्य मनुष्यों को मूक प्रोत्साहन प्राप्त होता है। मनुष्य जैसा सुनता है वैसा बोलता है और जैसा देखता वैसा करता है। स्पष्ट है कि संगीतज्ञ का जीवन एक ऐसा आदर्श है जो अज्ञात रूप से जनता तथा श्रोताओं के चरित्र बल पर विशेष प्रभाव डालता है। अतः उसका सर्वप्रथम दायित्व यह है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह सत्यव्रत सदाचारी हो और साथ ही साथ समाज में श्रेष्ठतम आदर्श प्रस्तुत करे और प्रचार के हेतु संघर्षमय जीवन व्यतीत करे। जिन विद्यार्थियों अथवा जिज्ञासुओं को संगीत प्राप्ति की इच्छा हो उनके आचार-विचार पर विशेष ध्यान देने के साथ-साथ इस प्रकार विद्यादान करे कि विद्यार्थी का दिन पर दिन भला हो, कला में प्रकाश हो और स्वयं को मान-पद-प्रतिष्ठा प्राप्त हो। तब वास्तव में संगीतज्ञ परम गुरुतत्व को प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये तानसेन जी के गुरु स्वामी हरिदास जी के समय तक संगीत केवल ईश्वर प्राप्ति का अद्वितीय साधन था। हर प्रकार के आचार-विचार के साथ चिन्तन, मनन, अध्ययन एवं अभ्यास किया जाता था। इसी कारण परमतत्व-दर्शन के साथ-साथ पंचतत्वों पर भी असाधारण अधिकार प्राप्त था। वे महापुरुष दीपक राग से अग्नि और मेघ राग से वर्षा का आवाहन कर सकते थे जो वर्तमान स्थिति में केवल मन बहलावे की गल्प गाथायें-मात्र रह गई हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संगीत संगीतज्ञ के जीवन का मापक-यंत्र है। संगीतज्ञ का परम कर्त्तव्य हो जाता है कि इस मापक-यंत्र के द्वारा अपना तथा सम्बन्धित समाज का जीवन सफल करे।

चमत्कार को नमस्कार होता है। ज्ञान-प्राप्ति वर्तमान समय में एक व्यावहारिक पदार्थ बन गया है। चमत्कार यदि होता है तो संगीत का मूल्य बढ़ जाता है और ज्ञान के आदान-प्रदान करने में संगीतज्ञ को श्रद्धा सेवा तथा धन की प्राप्ति होती है। नाम दायित्व है परन्तु काम लाभ का है। अतः संगीतज्ञ को अपने संगीत को सतर्क अभ्यास करके चमत्कृत बनाये रखना परमावश्यक है। अन्यथा उसको प्रचार करने का यथोचित अवसर प्राप्त न हो सकेगा। संसार एक व्यवहारिक क्षेत्र है जहाँ से जो कुछ लिया जाता है उसको किसी न किसी रूप में लौटाना पड़ता है। विकृत रूप से लौटाने में मानव दानव हो जाता है, पतन का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कारण बन जाता है। और सुन्दर उपहार रूप में प्रकृति की धरोहर उसको भेंट कर देने वाला मानव देवता तुल्य पूज्य हो जाता है। स्वामी हरिदास जी की गणना पंच महाप्रभु में है और आजकल के संगीतकार केवल मनोरंजन के साधन और तत्पश्चात्—यदि हेय भी कह दिया जाय तो किन्हीं अंशों तक अनुचित न होगा।

जो विद्या संसार से प्राप्त की उसको भी पूर्णरूप से सिद्ध न कर सके चार चाँद लगाना तो दूर की बात है। जो थी वह भी न रही। मनुष्य को परिस्थितियों के अनुसार चलना पड़ता है। कभी-कभी उन्नति के मार्ग अवरुद्ध हो जाने पर जीवन-पालन संघर्षमय हो जाता है परन्तु इससे विद्या-दान में हानि होने पर विद्या एवं संगीतज्ञ को ऐसा धक्का पहुँचता है कि फिर वह पीढ़ी दर पीढ़ी पनप नहीं सकता। यदि परिस्थितियों के वशीभूत होकर कला की उन्नति न हो सकी हो तो कम से कम जितना ज्ञान है उतने का प्रचार कर देना तो उचित है। अन्यथा विद्यालोप करने का बहुत बड़ा पातक उसके सर मँढ़ जाता है। क्योंकि विद्या की खोज बिना बलिदान किये नहीं होती है और फिर वह विद्यालोप हो जाती है तो प्रभाव पड़ता है पातकी की संतान के सुख और शान्ति पर। उदाहरण के लिये देख लीजिये खान्दानी गवैयों का जीवन। ख्याल क्या है ! किसी ध्रुपद की टाँग किसी की नाक, जो भी ख्याल में आ गया वही ख्याल है जो भूल गये वही 'वर्ज्य' है जैसे ध्रुपद की तानें। किसी भी कारण पिछली तीन शताब्दियों में संगीतज्ञों ने अपने इस दायित्व को भुला दिया, संगीत का ह्रास हुआ और उनके वंश का पतन हुआ।

यदि किसी ने आक्षेप कर दिया तो उत्तर मिलता है 'मियाँ, कुवाँ प्यासे के पास नहीं जाता' परन्तु संगीतज्ञ वह मेघ है अथवा देवदूत है जिसको पृथ्वी के कोने-कोने में जाकर प्यासों की प्यास बुझाने के साथ-साथ प्राणीमात्र को जीवन-दान देना पड़ता है। जिस प्रकार जिज्ञासु संगीत की खोज में घूमते हैं उसी प्रकार सद्गुरु सुपात्र की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खोज में रहते हैं कि कोई धीर-वीर-निर्भीक व्यक्ति मिले जो उनके भार को वहन कर उनको मुक्त कर सके। इसी कर्त्तव्य को पूरा करने के निमित्त गुरुजन शिष्यों को अपने आश्रम में रख कर विद्यादान के साथ-साथ जीवन-दान अथवा उस भार को उठाने की शक्ति प्रदान करते थे और तब वे गुरु-ऋण से मुक्त हो पाते थे। परिणाम में हर समय कल्याण था दैवी सम्पदाओं से सुसज्जित अमर जीवन था। राजा महाराजाओं ने धन-सम्पत्ति तथा मान सम्मान से सदैव विभूषित करके संगीतज्ञों को उनको उन्नति के प्रति प्रोत्साहन दिया परन्तु "पारे की जात कितनी चढ़ती है।" सदाचार रूपी प्राणों से हीन कलाकारों के हाथों संगीत बच्चों का खेल बन कर रह गया और अब भी है बच्चों का बहलाना परन्तु धोखा खाते हैं बूढ़े लोग भी। मदारी लोगों ने अपनी स्वार्थ-पूर्त्ति के हेतु इसको भानुमती का पिटारा बना दिया है। पूछा जाता है कि यह क्या है और ऐसा क्यों है ? तो उत्तर मिलता है मेहनत की कमाई मुफ्त में नहीं गवाई जाती। निष्कर्ष यह निकलता है कि पिटारे का अँधेर-खाता खान्दानी देन है जो शास्त्र-विमुख होने से पतन की ओर जा रही है। जिज्ञासुओं का खून चूसा जाता है। समर्थकों का कोई स्थान ही नहीं रह जाता। तुला के एक अंग में संगीतज्ञ और दूसरे में समर्थक अथवा जिज्ञासु श्रोताओं का स्थान है। दोनों का सन्तुलन होने पर संगीतज्ञ दायित्व के ऋण से मुक्त होता है अन्यथा नहीं। वर्तमान समाज बुद्धि-प्रधान है अतः संगीतकार को अपने समर्थकों को सन्तुष्ट करने के हेतु तर्क सिद्ध सङ्गीत प्रस्तुत करना लाभ-प्रद है। आजकल के अंतर्राष्ट्रीय प्रोग्राम को लीजिये। कलाकार का मूल्यांकन समर्थकों की संख्या से होता है। और उसी के अनुसार उसको मान, पद, प्रतिष्ठा राज्य की ओर से प्राप्त होता है। प्राचीन समय में भी समर्थकों द्वारा ही संगीतकार का यश चारों ओर फैलता था और शिष्यगण उस प्रतिष्ठा पर परम्परागत छाप लगाते चले जाते थे। अतः संगीतकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को आगन्तुक का पूर्ण-रूप से सम्मान करना उसका दायित्व है जो उसके भविष्य के साथ-साथ सङ्गीत के भविष्य के लिये भी उन्नति का मार्ग निर्दिष्ट करता है।

बिना व्याकरण के विद्या और बिना कौशल के कला दोनों पंगु हैं। प्रगति से पहले पदारोपण ही असम्भव हो जाता है। ठेठ गँवारों में, आडम्बर के द्वारा कौतूहल पैदा करना और उलटी सीधी विदेशी भाषा में वक्तव्य देकर प्रशंसा प्राप्त कर लेना और आजकल श्रोताओं को सङ्गीत सुना कर प्रशंसा प्राप्त कर लेना एक समान है। प्रमाण के लिये यदि श्रोताओं से पूछा जाय कि क्या सुना? कि पूरिया-कल्याण सुना। और गले में तो जैसे चरखी बंध रही थी—यह है शास्त्रीय गायन का कौशल। साथ ही साथ बहुत से कलाकार भी अपने प्रदर्शन का स्पष्टीकरण न कर सकेंगे। उत्तर यही मिलेगा कि यह हमारी खान्दानी चीज है और खान्दानी तान है और घराने की गायकी है। सम्पूर्ण दायित्वों का मूल-मंत्र है ज्ञान। संगीतज्ञ को बिना शास्त्र का ज्ञान किये कोई भी प्रदर्शन पर लोकमत चाहे प्राप्त हो जाय परन्तु उसका दायित्व जो विद्वज्जनों के प्रति है तभी पूर्ण होता है जबकि उन विद्वानों से भी सहयोग प्राप्त हो जो मूक भाव से संगीत की (मानस) पूजा कर रहे हैं। इस प्रकार मन, वचन और कर्म से संगीत में रत संगीतज्ञ को अपने दायित्व के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रकृति उसके पुरुषार्थ द्वारा ही सारी व्यवस्थायें स्वयं कराती जाती है। शिष्य और समर्थक-गण स्वयं उसका भार सम्भाल लेते हैं अतः वह संगीतज्ञ सब बन्धनों से जीवन-मुक्त, ऐश्वर्यपूर्ण, जाग्रत समाधि को प्राप्त होता है। श्रोतागणों के हेतु दर्शनी मूर्ति भी हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत की रसानुभूति में ताल का योग

संगीत के अभिन्न अंग ताल की उत्पत्ति के कारणों पर विशेष ध्यान देने पर ज्ञात होगा कि इन सब में यही भाव निहित है कि राग की परिभाषा में जो 'रंजकता' शब्द उपयुक्त है किसी प्रकार उसका हनन न हो अपितु उसमें वृद्धि और सिद्धि प्राप्त हो। अन्यथा संगीत-गोष्ठी अथवा समारोह का एक-मात्र उद्देश्य सर्वथा नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

स्वर की उत्पत्ति के साथ ही उसके काल अथवा लय की भी उत्पत्ति हो जाती है। लय के द्वारा ही स्वर का शोधन तथा परिमार्जन हो सकता है, अन्यथा नहीं। इस प्रकार शुद्ध होने के पश्चात् उसी लय के द्वारा स्वर में बल एवं माधुर्य्य उत्पन्न होने लगता है। यही बल और माधुर्य्य विभिन्न मात्रा काल जैसे दीर्घ……अणुद्रुत इत्यादि का द्योतक है परन्तु बुद्धि एवं ज्ञान के द्वारा विवेक का विषय होता है अन्यथा कौतूहल-मात्र रहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ताल की जननी लय स्वर को सुसज्जित करके संगीत के क्षेत्र में प्रवेश कराती है। यदि यों कहिये कि रंजकता के योग्य बनाती है तो भी अनुचित न होगा। स्वर को इस प्रकार बलिष्ट एवं मधुर बनाने के साथ-साथ लय अपने चक्र को भी एक नियम के अन्तर्गत ले आती है और मापक-यन्त्र का रूप धारण कर लेती है जिसको कि आचार्यों ने ताल की संज्ञा से बोध किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि संगीत यदि एक शरीर मान लिया जाये तो ताल उसका अस्थि-पंजर है। जिस प्रकार बिना अस्थि के शरीर एक सारहीन पदार्थ होता है उसी प्रकार बिना ताल के राग अथवा नृत्य केवल एक उन्माद होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर यदि रस का सागर है तो लय उसकी मथानी है, राग यदि रंजकता का अगम पारावार है तो ताल उसका पारदर्शक यंत्र है। व्यवहार (कार्य) एवं विहार (विश्राम) दोनों ही एक दूसरे के समर्थक, सहायक तथा पोषक हैं। दोनों का नियमबद्ध सञ्चालन ही जीवन में परमानन्द प्राप्ति का साधन होता है। परन्तु दोनों को आचरण में उतारना ही कठिन कार्य है। स्वर को जाग्रत करना और गति प्रदान करना तत्पश्चात् विश्रान्ति देना यही एक-मात्र कार्य राग की रंजकता के हेतु उपलब्ध साधन होता है। आखिर यह ऊँट दावात में किस प्रकार जाये। इसके लिये लय, मात्रा काल एवं एक विशेष माप-दण्ड की आवश्यकता है। स्वर की गति तथा विश्रान्ति यदि नियम बद्ध होकर चलती है तो स्वर में शिथिलता नहीं आती वरन् क्षणिक समाधियों का ताँता बँध जाता है। विश्रान्ति में भावी कल्पना की उत्पत्ति, तथा प्रकट में उसका साक्षात्कार होता जाता है। यह नियम हमको ताल के अन्तर्गत खाली भरी से प्राप्त होता है। खाली के चिन्ह पर मूक आदेश होता है कि स्वर में शक्ति-सञ्चार करें और प्रदर्शन के हेतु कल्पित मार्ग निर्धारित करें। इस अभ्यास को प्रयास में परिणत करने से बुद्धि सूक्ष्म होती जाती है, कल्पना शक्ति जाग्रत होती जाती है वाह्य इन्द्रियाँ सदैव सतर्क रहती हैं। परिणाम यह होता है कि कल्पना का संसार बना, श्रोतागणों ने सुना और आनन्द लिया। एक के बाद एक नई-नई दुनिया बनती चली गई। इसी आधार पर प्राचीन भारत में विलम्बित लय में गायन होता था और मधुरता तो मानों उनका जन्म सिद्ध अधिकार था। उदाहरण के लिये चार ताल लीजिये। तीन चार पर खाली और सात-आठ पर खाली। इसका यह तात्पर्य है कि इन दो स्थानों पर विश्रान्ति और श्वास-पूर्ति। इस कार्य-क्रम से संगीत-प्रदर्शन में शिथिलता नहीं आती वरन राग और ताल पर असाधारण अधिकार सिद्ध होता जाता है। साथ ही साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'उपजत अंग स्वभाव' वाला सिद्धान्त भी तो अटल है। स्वभाव जनित रसों के विभिन्न स्वरूप एवं नाम हैं उन्हीं की स्थिति संगीत में भी अपेक्षित है। ताल तो उसमें सोने में सुगन्ध का काम करती है।

आजकल उत्तरी-भारत में प्रचलित तालों को मोटे तौर पर दो भागों में कहा जाता है। बड़ी ताल और आधी तालें। अर्द्ध के अन्तर्गत कहरवा और दादरा विशेष रूप से समझे जाते हैं और किन्हीं अंशों तक रूपक भी अद्धा ही माना जाता है। कहरवे की चलतमें बाल-बच्चे भी ताली बजा-बजाकर कूदने लगते हैं। बुड्ढों की कमर में भी जान आ जाती है तो नौजवानों की रसानुभूति के विषय जो कुछ भी कहा जाय वह थोड़ा ही है। इस प्रकार के चलन में एक विशेष उल्लास की अनुभूति होती है। अंग-अंग नाचने लगता है। हृदय-कमल खिल उठता है। इसी प्रकार यदि दादरा सांगोपांग गाया जाता है तो विशेष मादकता की अनुभूति होती है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग में उमङ्ग-उत्पन्न होती है। रोम-रोम अनंगमय होकर फड़कने लगता है। हृदय-कमल को वायु का झोंका सा लगता है उसमें कम्पन उत्पन्न होता है। शरीर पर सिहरन दौड़ जाती है। नेत्रों के सम्मुख सुनहले संसार के स्वप्न नाचने लगते हैं। रूपक ताल में अद्भुत प्रभाव है। विरह वेदना में नायिका की शारीरिक एवं मानसिक गति-विधि अनिश्चित होती है। सम पर ताल को मूर्छा आ जाती है जैसे विरहणी की ऐसी दशा जाग्रत स्वप्न में हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि ताल अध्याय का मनीषियों द्वारा प्रतिपादन किया गया है उसमें व्यक्तिगत भावनाओं को मनोवैज्ञानिक आधार पर अध्ययन करके गणित द्वारा पुनरावर्त्तन का मार्ग बना दिया गया है। अब उसका प्रदर्शन राग के द्वारा हो किंवा वृत अथवा नृत्य के द्वारा हो। परिणाम उसका यही है कि रसानुभूति में अभिवृद्धि हो।

एकांगी अथवा एक व्यक्ति द्वारा प्रदर्शन होने के अलावा समाज में सामुहिक-गोष्ठी का प्रचार भी प्राचीन है। सामुहिक-संगीत में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समस्त कलाकारों का एक रस सिद्ध होना परमावश्यक होता है। अन्यथा समाज और सङ्गीत कौतूहल का विषय बन जाता है। अनन्तर अभ्यास के पश्चात् कलाकार अपनी-अपनी कल्पना की स्वतन्त्र उड़ान लिया करते हैं क्योंकि यही उड़ान अथवा मनोक्ति ही उनकी तपस्या की परिचायिका है और परमानन्द की जननी है। विभिन्न कलाकार अपनी-अपनी विचार धारा अथवा कल्पना के लिये स्वतन्त्र होते हैं, रमण करते हैं संगीत-सरिता में। अपने-अपने कौशल की चरम सीमा पर पहुँच कर जब वे फिर सम पर आते हैं उस समय मूर्ख मनुष्य को भी इतनी आनन्द की अनुभूति होती है कि उसका भी सर हिल जाता है। और जब-जब उन कलाकारों के दर्शन होते हैं तब-तब स्मृति-पटल अतीत की घटना द्वारा वही रसानुभूति करा देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ताल के योग से रसानुभूति अन्तःकरण का क्षणिक विषय ही नहीं रह जाता वरन् उसका अपना एक स्वतन्त्र स्थान भी बन जाता है जो मनुष्यों को परमानन्द की प्राप्ति का मार्ग उद्घाटित कर देता है।

यहाँ पर ताल के विकृत अङ्ग द्वारा जो रौद्र और वीभत्स रसों की अनुभूति होती है लिख देना असंगत न होगा। बड़ा ख्याल जो एक ताल, झूमरा, तिलवाड़ा आदि बड़ी तालों में गाया जाता है वह अधिकतर नीरस एवं कर्ण-कटु होता है। कारण यही है कि आखिर की मुखचालन की दो चार मात्राओं को छोड़कर सारा गीत ताल के विचार से कोरा उन्माद अथवा गले की कसरत होता है न कि संगीत। फ़िल्म संगीत अद्धे पर ही गाया जाता है परन्तु सुनने वाला एक क्षण के लिये अवश्य मोहित हो ही जाता है। बड़े-बड़े कलाकार जब किसी प्रकार ताल-चक्र से बाहर हो जाते हैं तब देखिये बहार। दोनों साक्षात् रुद्र का रूप धारण कर लेते हैं। श्रोतागण रसानुभूति द्वारा अग्नि पर घृत का काम करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमारे सामाजिक-जीवन में संगीत पग-पग पर इसी कारण हमारा साथी है कि वह हमारे आनन्द में प्रफुल्लित होता और दुख में दुख उठाता है और दोनों विरोधी परिस्थितियों को समयानुकूल उत्पन्न करने की शक्ति राग के समकक्ष ताल को भी है। जिस प्रकार निर्गुण निराकार ब्रह्म लीलामय रूप धारण करने के हेतु माया पर आश्रित होता है उसी प्रकार स्वर को रसानुभूति की लीला करने के हेतु ताल का आश्रय लेना पड़ता है। इस नियम को भंग करने से संगीत अपूर्ण और अरुचिकर हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत और साहित्य

संगीत कभी उपासना का मार्ग था, अभी मनोरञ्जन का साधन है। दोनों ही दशाओं में उसका मन पर अधिकार कर लेना परम आवश्यक है। श्रोतागण कैसे भी पात्र क्यों न हों परन्तु संगीतकार का सुपात्र होना सर्वथा वाँछनीय है। उसका, मन, वचन और कर्म से शुद्ध होना उसके सुपात्र होने का सर्वश्रेष्ठ लक्षण है। वचन शुद्ध करने के साथ-साथ शुद्ध कर्म करने से मन अधिकांश शुद्ध एवं प्रभावशील होता जाता है। अतः सिद्ध होता है कि स्वस्थ संगीत का प्रतिपादन करने के लिये विशुद्ध साहित्य की आवश्यकता अनिवार्य है।

हमारे पूर्वज ऋषियों ने संगीत के साहित्य को इतना सुलभ कर दिया था कि शास्त्रीय ज्ञान न केवल अध्ययन का विषय रह कर गेय साहित्य का भी परिपूरक बना दिया था। उसके आधार पर अन्य काव्य भी सफलता-पूर्वक गाया जा सकता था। और वह काव्य समाज के किसी न किसी दृष्टिकोण का समर्थक अथवा संशोधक होने के कारण व्यक्ति विशेष के द्वारा ही नहीं वरन् समस्त समाज के द्वारा अभिनन्दन का आदर्श बन जाता था। संगीत के द्वारा उस काव्य में अमरतत्व की छाप लग जाती थी। संगीत-प्रेमी उस काव्य अथवा साहित्य द्वारा उत्पादित-रस की अनुभूति में आनन्द-विभोर हो जाते थे। ऐसी थी संगीत और साहित्य की प्रणय-लीला। इसने संसार को नचा रखा था। जबसे दोनों का विछोह हुआ है। संगीत ने जनसाधारण से मुख मोड़ लिया है। कुछ पुजारियों ने पेट से निकलने वाली ज्वाला शान्त करने के हेतु संगीत के द्वार पर सत्याग्रह का डेरा डाल दिया है और चिल्लाना शुरू कर दिया है। संगीत के सेवक उनका प्रचार कर रहे हैं कि यह उनका प्रलाप नहीं वरन् राग की अलाप और तानें हैं। परन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मृत को जीवित कह देने मात्र से प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हो जाती। साहित्य सङ्गीत का प्राण है। विना साहित्य के सङ्गीत का जीवन मृत-प्राय है। केवल आलाप और तानें कोलाहल का प्रदर्शन है जो केवल उस स्वार्थ का पोषक है जिसकी पूर्ति के अन्य मार्ग सङ्गीतकार को सदा के लिये बन्द हैं।

शब्द नाद का सहोदर है। स्वरूप में विभिन्नता होने पर भी दोनों का सङ्गठन इतना सुदृढ़ है कि एक का जीवन दूसरे का प्राण है। स्वर स्वतन्त्र रूप से रस का उत्पादक नहीं है। वह तो विविध व्यञ्जनों के अन्तस्तल में निहित है। व्यञ्जनों का विशुद्ध तथा सानुपातिक सम्मिश्रण रसोत्पादन करता है। स्वर उस उत्पादित रस का ग्राहक बन उसको चिरजीवन प्रदान करता है और अनुभूति के योग्य बनाता है। इस प्रकार वाहन एवं वाहक अपने स्वतन्त्र इतिहास का विषय बन जाते हैं। व्यञ्जन जिह्वा, दन्त, कण्ठ तालू का विषय है। साहित्य के प्राण शब्द को शुद्ध अथवा सिद्ध करने के हेतु व्यञ्जनों का शुद्ध करना आवश्यक है। सङ्गीत और साहित्य वाग्देवी के दोनों अंग हैं। एक की सिद्धि विना दूसरे की शुद्धि असम्भव है। साहित्य को स्वच्छ रूप से प्राप्त कर लेने पर सङ्गीत की प्राप्ति किन्हीं अंशों तक सहज में हो सकती है। अतः हम साहित्य को सङ्गीत का समावेशक अथवा संग्रह-कर्ता भी कह दें तो अनुचित न कोगा।

राग-परिचय अथवा मुद्रा-ज्ञान आधुनिक सङ्गीत समाज में बहुधा परम्परानुगत है। यद्यपि संगीत-शास्त्रों में उनका विवरण पूर्ण रूप से प्राप्त हो सकता है परन्तु संगीत कारों में शास्त्र-ज्ञान अथवा साहित्य की कमी के कारण विद्या अथवा कला के स्वस्थ रूप को धारण करने की शक्ति ही उत्पन्न नहीं हो पाती। दाता में दातव्य की कमी हो तो दे क्या सकता है, केवल भुलावा। इसी कारण पिछली चार शताब्दियों में संगीत पतन के गर्त में गिरता चला गया और उत्थान जो कि नितान्त आवश्यक है अन्धकारमय हो गया। साधन है तो केवल एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो कि उसमें उचित रूप से साहित्य को स्थान दिया जाय। रागों के स्वभाव और समय के अनुसार ही उसमें साहित्य का निर्देशन और पठन पाठन होने से संगीत पुनः अपने वास्तविक रूप को प्राप्त हो सकता है।

अंग भंग सङ्गीत हर समय मानसिक-शान्ति के स्थान पर मानसिक-विकलता का कारण बन जाता है। और यह तत्व दर्शन के सिद्धान्त से हर समय और हर व्यक्ति से सम्बन्धित कथ्य ही नहीं तथ्य भी हैं। जिस प्रकार भूखे मनुष्य की भोजन देखने अथवा चख लेने भर से उसकी क्षुधा और भी विह्वल कर देती है वही दशा रसिक-हृदय सङ्गीत श्रोता की होती है। सङ्गीत में रसोत्पादन हुआ उसकी अनुभूति श्रोता को हुई परन्तु यदि वह अनुभूति सङ्गीतकार की सहायता से परिपक्व अवस्था को प्राप्त न हुई तो गायक और श्रोता दोनों के मन की स्थिति डावाँडोल हो जाती है। परन्तु किया क्या जाय मजबूरी है। भँवर जाल में फँसा मनुष्य जिस प्रकार पोत अथवा पतवार के भग्नावशेष को कस कर पकड़े होता है ठीक उसी प्रकार सङ्गीतकार सङ्गीत के छिन्न-भिन्न अंगों को कलेजे से लगाये पड़े हैं। कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, कहीं पर तुकान्त कहीं पर अतुकान्त मन गढ़न्त, कहीं पर किसी से सुन कर, कहीं किसी से माँग कर तात्पर्य यह है कि सङ्गीतकार स्वयं उस कमी का अनुभव कर उसको पूरा करने का प्रयत्न करते रहे हैं। दैव योग से संगीत के पोषक भी गत शताब्दियों में बछिया के बावा ही हुए। खूब गुज़रेगी जो मिल बैठेंगे दीवाने दो। ठीक यही हाल हुआ भी। श्री सम्पन्न महापुरुष धन यौवन की मादकता में डूबे रहते। संगीत-समाज को अपनी विलासिता का परिपूरक एवं पूर्वजों की आन बान शान का प्रतीक मानकर, उसको इस प्रकार दान दिया करते जिस प्रकार पितृ-पक्ष में पुत्र पूर्वजों के नाम पर दान किया करता है। ऐसा करने से समान ऐश्वर्यशाली अधिकारियों में उन दाताओं की गणना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रेष्ठ पुरुषों में होती। अतः कलाकारों को साहित्य मिला, नवाब साहब की तारीफ़, नवाब-ज़ादे की चिलमन और अल्ला जाने मौला जाने इत्यादि-इत्यादि। व्यक्तिगत महफिलों में मानसिक विलासिता के अश्लील गीत सङ्गीतकारों को आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभदायक सिद्ध हुये। बस क्या था भैरव जैसे गम्भीर प्रकृति के राग में भी आई पिया मिलन की बारी। गीत गोविन्द के मर्मज्ञों को यह कविता 'रहस्यवाद' का विषय बन सकती है परन्तु जन साधारण के लिये दिन भर उसकी—पिया मिलन की—रटन मानसिक विकार का विषय बन जाती है और बहुतायत में बन भी चुकी है। प्रस्तुत विवेचन का यह अभिप्राय कदापि नहीं कि मानसिक विकार प्रातः बेला में नहीं होते। यह तो अभ्यास का विषय है। नारकी कीट तो उस रौरव नर्क की दुर्गन्ध को प्राण वायु के समान सेवन करते रहना चाहते हैं। परन्तु सङ्गीत के सुपात्र सुपुत्र को अपने स्तर से नीचे नहीं गिरना चाहिये। राग रागिनी के स्वरूप का दर्शन करना चाहिये। और प्रस्तुत करते समय साहित्यिक सौंदर्य द्वारा उसमें निहित रस की अनुभूति करनी चाहिये तभी तो 'तानसेन की तान में सभी तान मस्तान' वाली किंवदन्ती सिद्ध होती है।

गेय साहित्य एक विस्तृत विषय है जिसका ज्ञान है तो अनिवार्य परन्तु जिनका साधना-काल बीत चुका है उनसे पूर्ण-ज्ञान की आशा नहीं की जा सकती। गेय साहित्य के आधार हैं, राग, देश, काल, बेला एवं परिस्थिति। राग के चरण चतुष्टय को परिपूर्ण करना साहित्य का विषय है जो पिंगलशास्त्र की सहायता अथवा नियमानुशीलन के द्वारा प्राप्त हो सकता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्थायी में गीत के स्थाई भाव हर्ष, शोक, उन्माद इत्यादि का आरोपण होता है। गति शील होने पर किंचित शिथिलता अथवा प्रबलता आ तीज है। उद्दीपन कार्य राग के द्वितीय चरण अन्तरे में इस प्रकार निहित है अतः साहित्य से भी ऐसी ही आशा की जाती है कि स्थाई भाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में रसोद्दीपन कर उसका संचार करे जिससे अन्त में आभोग के द्वारा रसानुभूति परिपक्व अवस्था को प्राप्त हो। शोक से करुणा, वैराग्य और अन्त में शान्ति। हर्ष से प्रेम, आनन्द पश्चात् परमानन्द। इस प्रकार यदि साहित्य और राग संतुलन के साथ गति शील होते हैं तभी साहित्य और संगीत की वास्तविक अथवा मर्म-भेदी शक्ति की अनुभूति हो सकती है। उपरोक्त विवेचन पर व्यक्तिगत अनुशीलन द्वारा स्वयं अनुभव हो सकता है कि राग का रूप एवं समय (ऋतु-वेला) किस रस के समर्थक शब्दों की रचना का ग्राहक है और परिस्थिति विशेष उससे प्रभावित है अथवा नहीं। इस विषय पर अधिक बल न देकर केवल इतना ही कहना पर्याप्त है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललित कलाओं में संगीत का स्थान

सङ्गीत को ललित-कलाओं में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। यह सत्य सनातन है। आधुनिक विकास युग में भी यह चिरन्तन सत्य सर्वसम्मति से निर्णीत है। अतः वाद-विवाद के परे इसको सूक्ष्म के ज्ञान का निर्देशक मानकर, समर्थक तत्वों के पुनरावर्तन द्वारा अनुशीलन करना ही मंगलकारी है।

पुरुषार्थ मनुष्य-मात्र का कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य-कर्म में निष्ठा सफलता की कुञ्जी भी है और उसका मापक-यन्त्र भी। चंचलता, मन का गुण कर्म एवं स्वभाव है। उसको शान्त करना अथवा निष्क्रिय बनाकर मंगल की कामना करना मानों प्राकृतिक नियम को चुनौती देना है। गति, मन का प्राण है। गतिशील मन सिनेमा की सक्रिय मशीन है जो अतीत की किसी न किसी अनुभूत घटना को स्मृति-पटल पर प्रतिबिम्बित कर अन्तःकरण को दर्शक बना तद्रूप होने की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देती रहती है। यही मानस-नर्तकी यदि पुरुषार्थ में लीन एवं तल्लीन होती जाती है तो एक दिन अवश्य वह कला की जननी हो जाती है।

कलाकार को कला की उत्पत्ति तथा विकास के हेतु व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की आवश्यकता होती है। मन, सौन्दर्य की खोज में सतत चलायमान रहता है। मन की गति पर केवल पुरुषार्थ का नियंत्रण रहने पर कला का विशुद्ध रूप प्रकट होता है। अतः संगीत एक परम पवित्र कला सिद्ध होती है। परन्तु जब मन को कला सृजन के हेतु वाह्य उपकरणों से समागम करना पड़ता है और पुरुषार्थ को उसके पोषण का भार सौंप दिया जाता है तो कला सुन्दर होने पर होती वर्णसंकर ही है अतः संगीत की अपेक्षा निम्न स्तर पर अङ्कित की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाती है। चित्र, मूर्ति, भवन-निर्माण एवं काव्य, यह कलाएँ उपरोक्त कथन के अनुसार बाह्य साधन उपलब्ध होने पर ही अस्तित्व को प्राप्त होती हैं। अतः कलाकार को कला के अभ्यास में ही पर्याप्त मात्रा में धन एवं पुरुषार्थ के साथ, धैर्य की आवश्यकता पड़ती है। और धैर्य भी ऐसा कि सारा प्रयास विफल होने पर भी न छूटे क्योंकि वर्तमान युग की समस्या जटिल है। इसमें सफल होना भी एक कला विशेष है जो अधिकांश कलाकारों की बुद्धि से परे का विषय है। परम कलाकार ईश्वर भी उस कला को तब ही सफल बना पाता है जबकि वह स्वयं लक्ष्मी का रूप धारण कर लेता है। यह दीन हीन कलाकार तो कौड़ी के तीन-तीन मारे-मारे फिरते हैं। और वे कलाएँ परम पूज्या व्यवसायकला के चरणों में पड़ी अपने प्राणों की भिक्षा माँग रही है। परन्तु प्राण है कहाँ ? वह तो अपने भरण-पोषण के चक्र में जन्म-मरण के स्वप्न देखते फिरते, भटक रहे हैं संकल्प-विकल्प के भ्रम जाल में। प्यास लगी है बुझानी जरूर है क्योंकि वह तो एक ज्वाला है। कोयले की तूलिका, चालू सड़क की पृष्ठ-भूमि चित्र बन गया, सराहने से पहले ही कराहने की इच्छा हो जाती है।

होली दिवाली पर खिलौने बनते और बिकते हैं। यही परम्परा चालू है। परन्तु पेट भरने के लिये चाक चलता है बनते हैं घड़े और मटके। कलाकार का खान्दानी नाम है परजापत। सब ठीक है ही कला की प्यास न बुझी तो क्या हुआ जनता की पिपासा तो मटकों के जल से शान्त होती ही है। भवन-निर्माण यवन काल तक कला का प्रतीक था। यद्यपि उस समय भी था यह सब धन का ही खेल, परन्तु दरिद्र नारायण का स्वास्थ्य उस समय इतना सबल न था और नहीं राजनैतिक बन्धन इतने जटिल थे कि वर्तमान युग के समान मनुष्य चैन से न रह सके और न खा सकें। फिर भी घर-घर न ताजमहल बन सके और न सोमनाथ का मन्दिर। वर्तमान युग में अधिकांश कलाओं को वैज्ञानिक विधानों में समाहित कर लिया गया है। भवन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्माण इस समय गणित, रसायन, एवं भौतिक शास्त्र के आधार पर किया जाता है। यदि इस वैज्ञानिक सामञ्जस्य को कला कहाभी जाय तो भी कोई आपत्ति नहीं परन्तु है केवल मस्तिष्क एवं वाह्य पदार्थों का विषय। मन एवं हृदय के रंजन, स्त्रवन एवं सन्तुलन के स्थान पर कौतूहल उत्पन्न होता है। धन का खेल होने के नाते अधिकांश धन वर्ग का गर्व होता है। धनहीन कलाकार तो दो ही प्रकार के महल बनाना जानता है—सोने के महल अथवा हवाई महल।

सङ्गीत को आवश्यकता हैं मानस-मन्दिर और सदाचार की। मारवाड़ और गुजरात की पनिहारी पर भी माँ सरस्वती की उतनी ही कृपा हो सकती है जितनी कि बङ्गाल की कोयल पर अथवा लतामंगे शकर पर। पंजाब की किसानबाला भी उतना ही मनोहर गीत प्रस्तुत कर सकती है जितना कि उत्तर प्रदेश की ग्राम्य गायिकाएँ। न तान-पूरे की आवश्यकता है न तबले की। हथेलियों की ताल और कण्ठ का गान। यह स्वाधीनता, और एकछत्र राज—उन श्रोताओं पर जो स्वयं अपने को कुछ समय के लिये भूल जाते हैं कि उनका मान पद और प्रतिष्ठा क्या है और वे हैं किस स्थान पर—एक ओर, और अन्य कलाओं के कलाकारों को धनवानों की दासता दूसरी ओर। दिन रात का अन्तर है। पुनः वाह्य साधनों सेतो सङ्गीत अलंकृत होता है। सोने में सुगन्ध होती है। चित्र एवं मूर्ति कला उसमें जीवित होती है मृतक नहीं। चित्र एवं मूर्त्ति-कार तो वृहत् जीवन के केवल एक अंग को लेकर किसी विशेष भाव को अंकित करता है जिसके समझने के लिये दर्शक में अनुभव एवं ज्ञान की आवश्यकता है। परन्तु सङ्गीत के नृत्य-विभाग में जीवन की अनेकानेक झाँकियों द्वारा मनुष्य-मात्र को मन्त्र-मुग्ध कर देने की शक्ति है। ज्ञान एवं पूर्व अनुभूति तो कला-कोविदों के लिये ध्यान योग का साधन बन जाता है। बालकोंके लिये तो कौतूहलपूर्ण होने पर भी मनोरंजन एवं उल्लास का विषय होताहै। अन्य कलाओं की मौलिकता बुद्धि-विलास और प्रगति पैसे में है परन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सङ्गीत की मौलिकता चित बुद्धि के योग द्वारा तत्व-चिन्तनमें है, चाहे स्वभाव से किया जाये अथवा सद्भाव से। इसकायह अर्थ कदापि नहीं कि धन से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। सम्बन्ध अवश्य है परन्तु है उलटा। अन्य कलाएँ अपने सेवक को धनवान का आश्रित बनाती हैं क्योंकि वे स्वयं भी आश्रित हैं परन्तु सङ्गीत तो अन्य प्राणियों को तन मन धन से अपना सेवक बनाती है।

काव्य और सङ्गीत का सम्बन्ध जटिल है। दोनों एक दूसरे के प्राण हैं। छोटे बड़े होने का प्रश्न हल करना पहेली है। जहाँ तक एक का जीवन दूसरे पर आश्रित है वहाँ तक दोनों का स्थान समान है। बात भी ठीक है। सङ्गीत को जीवित रखने के लिये शास्त्र-निर्माण हुआ। राग रागनियों को शुद्ध एवं स्वस्थ रखने के लिये काव्य-निर्माण हुआ और सङ्गीत उन शास्त्रों और काव्य के हाथों मनुष्य की थाती रहा। गेय काव्य एवं पाठ्य काव्य में पाठ्य-काव्य स्वतन्त्र है। और गेय-काव्य भी सङ्गीतात्मक न होने पर स्वतन्त्र हो सकता है। तब सङ्गीत का अस्तित्व ? वह है पक्षियों के कलरव में। कोयल की कूक में, जहाँ से मनुष्य को प्रेरणा मिलती है। तार की झंकार में सङ्गीत नहीं वरन् मृग के प्राण होते हैं। मृदंग के घोष में हाथी की मस्ती छिपी होती है। वेणु की हूक में गौओं का हृदय उलझ जाता है। कोयल की कूक से लेकर, वेणु की हूक तक कहीं काव्य का नाम नहीं। काव्य को जीवित रखने के लिये और परंपरानुगत प्रगति के लिये सङ्गीत तो उसकी सेवा वाहन रूप में कर देता है। सो भी यदि श्रोतागण समझे तो ठीक है अन्यथा उस रूप में तो सङ्गीत भी बन्दी हो जाता है। स्वतन्त्र संगीत तो हृदय का अभिभावक है। प्राणवायु उसका वाहन है, अतः हृदयोल्लास के पश्चात् मनोरञ्जन का विषय, तदनन्तर बोध-गम्य सत्य से परे परमचिन्तन से परमानन्द स्वरूप को प्राप्त होता हैं। इस दृष्टि-कोण से संगीत का क्षेत्र काव्य की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत है। विशेष ध्यान देने योग्य बात.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह है कि मूक बधिर भी नृत्य का आनन्द ले सकता है। कि प्रज्ञा-चक्षुओं का तो किन्ही अंशों तक संगीत पर जन्म-सिद्ध अधिकार होता है। साथ ही साथ उनके जीवन-यापन की समस्या भी हल हो जाती है। संगीत केवल बुद्धि का विषय नहीं है उससे भी परे हैं अतः हम इसको कला न कह कर ईश्वर का निराकार रूप मान लें तो अत्युत्तम है।

वास्तव में व्यवसायिक दृष्टि-कोण ने पात्रों को श्रद्धा और समय से वंचित कर दिया है। जीवन-निर्वाह की कठिनाइयों ने बहुतों को इस कला के आधार पर ही कला से विमुख कर दिया है। विद्यार्थी-जीवन खाँडे की धार है जिसका सफली भूत होना असम्भव तो नहीं परन्तु, दुष्कर अवश्य है। समय की प्रगति एवं प्रवाह को देखते हुए कहना पड़ता है कि सङ्गीत के पुजारी एवं समर्थक उसे जिस रूप में भी देखना उचित समझते हैं वही स्थान सङ्गीत को प्राप्त हो सकता हैं। यदि वे लोग चाहें तो उसे केवल धनो पार्जन का साधन बना सकते हैं औए यदि चाहें तो लोक कल्याण का साधन भी बना सकते हैं। इससे सङ्गीत की वास्तविकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यही चिरन्तन सत्य है कि सङ्गीत को ललित-कलाओं में सर्व श्रेष्ट स्थान प्राप्त है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवनद्ध-वाद्य की परम्परा और तबले का विकास

पौराणिक गाथाओं के अनुसार अवनद्ध-वाद्यों की उत्पत्ति अन्य वाद्यों से पूर्व मानी जाती है और प्रवर्त्तक माने जाते हैं ब्रह्मा जी। सामान्य रूप से विचार करने पर भ स्पष्ट है कि चर्म का उपयोग असभ्य जातियों के जीवन का आधार रहा है। अतः अवनद्ध वाद्यों के सृजन को सर्व प्रथम मानने में कोई आपत्ति नहीं प्रस्तुत होती। प्राकृतिक साधनों की सहायता से मनुष्य ने बुद्धि-बल का उपयोग किया। वाद्यों के स्वरूप भी बने और बिगड़े। वैदिक-काल में मार्गीय सङ्गीत प्रचलित था। उस समय साम-गायन में भूमि-दुंदुभि पर ताल लगाई जाती थी जो भूमि में गढ़ा खोद कर उसके मुँह पर चर्म मँढ कर बजाया जाता था। एक ढोल का प्रकार होता था। उसको आदम्बर के नाम से पुकारा जाता था। लकड़ी का भी ढोल प्रचलित था जिसका नाम बानस्पति रखा गया। इस प्रकार के विवरण उपनिषदों से प्राप्त हुए हैं। अतः उसी आधार पर कहा जा सकता है कि वैदिक काल में सङ्गीत यथेष्ट उत्कर्ष पर था।

तत्पश्चात् रामायण काल में और भी विकास हुआ। उस समय के आधार ग्रन्थों में भी अनेक नवीन नाम मिलते हैं जैसे घट, डिमडिम, भेरी, मृदंग इत्यादि। ढोल डमरू जो अब भी प्रचलित हैं, यह भी प्राचीन वाद्य हैं जो परम्परागत जैसे के तैसे चले आ रहे हैं। महाभारत काल में भी अवनद्ध वाद्यों को सहयोग प्राप्त हुआ। ढोलकी शब्द महात्मा बुद्ध के समय में प्रयुक्त होता था। गुप्त वंश के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजाओं को सङ्गीत के प्रति विशेष अभिरुचि थी उनके दैनिक जीवन के साथ-साथ युद्ध क्षेत्र में भी सङ्गीत को महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त था। पुष्कर, मुराज मृदंग, दुंदुभि आदि वाद्य उस समय व्यवहार में लाये जाते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि वर्तमान मृदंग और तबला, प्राचीन दुंदुभि, मेरी, भादला पटह और मुराज आदि वाद्यों के ही रूपान्तर हैं।

ऐसा विचार किया गया है कि मृदंग का सृजन भूमि-दुंदुभि के आधार पर ही हुआ है। इसका एक प्राचीन नाम पुस्कर-वाद्य भी है। सम्भवतः यही पुस्कर-वाद्य वर्तमान पखावज है। अतः हम अधिकृत रूप से कह सकते हैं कि मृदंग तबले की अपेक्षा प्राचीन वाद्य है। परन्तु उसी समय एक अन्य वाद्य का प्रचार था। जिसका नाम दुर्दुर था और वह बहुत कुछ वर्तमान तबला वाद्य से मिलता जुलता था। हो सकता है कि उसी वाद्य के स्वरूप को तबले का नाम दिया हो अथवा उसमें कुछ परिवर्तन करके तबला बनाया गया हो। चित्रकला ने इस विषय पर खोज करने में विशेष सहायता की और साधन जुटाए हैं।

ऐतिहासिक ग्रंथों में भरत नाट्य शास्त्र प्रमाणित-ग्रन्थ हैं। उसमें मृदङ्ग, ददुर, पणव ऊर्ध्वक, आलिग्य, झझरी और पटहा आदि नामों का उल्लेख किया गया है। यह वाद्य राज-दरबारों में स्थान और सम्मान प्राप्त कर चुके थे अतः हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों ने उनके उत्कर्ष पर विशेष ध्यान भी दिया।

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के समय में भारतीय-संगीत में विशेष परिवर्तन हुआ। उसके दरबार में अमीर खुसरो नामक फारसी कवि और गायक रहता था। उसने भारतीय-संगीत में फारसी-सङ्गीत का मिश्रण किया। अनेक नवीन रागों की रचना और नवीन तालों की रचना के साथ साथ तबले का भी आविष्कार किया। अतः वर्तमान विचार-धारा के अनुसार तबले का जन्म अमीर खुसरो के द्वारा माना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है। उसने मृदंग के दो अलग-अलग भाग किये और बायें पर भी स्याही लगवा दी। कुछ लोग इससे सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि तबले का प्रचार पहले ही से था और अमीर खुसरो के के समय में कल्लू खाँ तबले के बहुत बड़े उस्ताद हुये हैं। उनके दो शिष्य थे—बक्सू खाँ और मोदू खाँ। कुछ लोगों का मत है कि दिल्ली के सुधार खाँ तबले के प्रवर्त्तक हैं। विषय को विवाद-ग्रस्त बनाने की अपेक्षा यह मान लेना उत्तम है कि तबले की उत्पत्ति का समय चाहे कोई भी हो परन्तु उसका विकास-काल अलाउद्दीन के समय से ही प्रारम्भ होता है।

मुगल बादशाह हुमायूँ भी सङ्गीत-प्रेमी था परन्तु राजनीतिक उथल-पुथल के कारण वह सङ्गीत को न तो सहयोग ही दे सका और न बल ही दे सका। परन्तु उसके पुत्र अकबर का राज्य-काल संगीत का स्वर्ण-युग माना जाता है। उसका समय सुख और शांति के दृष्टि कोण से संगीत का पोषक था। उसके समय में, वर्तमान युग के समस्त वाद्य प्रचलित थे। ढोल, नक्कारा और नौबत अकबर की स्वयं की दिन चर्या से सम्बन्धित थे। राज्य क्रम का समय वितरण भी उन्हीं की सहायता से होता था। कला क्षेत्र में उस समय तबला और मृदंग या पखावज ही विशेष रूप से प्रचलित थे। उसी समय दक्षिणी भारत में मृदंगम्, मर्दलम् आदि अवनद्ध वाद्य प्रयोग में लाये जाते थे।

'तबला' शब्द को फारसी साहित्य की दृष्टि से देखने पर ज्ञात होगा कि उसका नाम नक्कारे से सम्बन्धित सार्थक शब्द है। वास्तव में भारतीय संगीत की परम्परा में तो मृदंग का ही विवरण विशेष रूप से प्राप्त होता है और ध्रुपद धम्मार गायन आज भी इस पर-म्परा की पुष्टि करते हैं कि शास्त्रीय संगीत में मृदंग का ही विशेष स्थान है। पर फिर भी तबले की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि उसकी मधुरता और सरलता ने जन साधारण में तो स्थान प्राप्त कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही लिया पिछले डेढ़ सौ वर्षों में ज्यों-ज्यों ख्याल गायकी का प्रचार बढ़ता गया त्यों-त्यों तबले का महत्व भी बढ़ता गया। स्थानान्तर होने के कारण वादन शैलियों में विशेषताएँ उत्पन्न हुई और इस प्रकार मुसलमानी वाद्य होने के कारण मुसलमानी नाम 'घराने' भी प्रयोग में आया। दिल्ली, पंजाब, लखनऊ और बनारस के नाम से चार प्रकार के बाज बजाए जाते हैं। इसके प्रदर्शन की विशेषताओं को ही इनकी मौलिकता कहा जा सकता है।

दिल्ली घराने के बाज में विशेषता यह है कि बोल अधिकतर चाँटी और स्याही पर बजाये जाते हैं। स्याही पर के बोल की अदा-कारी मध्यमा उँगली से की जाती है। छोटे-छोटे कायदों के पेशकार से, बाज शुरू होकर, वही, गत कायदे बनते जाते हैं। अतः बड़ी बड़ी परने और छन्द बजाने की पृथा मिटती सी जा रही है और स्वतंत्र वादन शैली उसका प्रधान अंग बनता जा रहा है। इसी घराने से मिलता जुलता बाज अजराड़ा है। इसमें कुछ काम मैदान का बढ़ जाता है परन्तु प्रधानता चाँटी और स्याही के बोलों की ही रहती है। लय प्रायः आड़ी रहती है इस कारण काम कठिन हो जाता है विस्तार क्षेत्र कम हो जाता है। लखनऊ के बाज में थाप, चाँट और स्याही के बोलों का सन्तुलन होता है। ठेके के पेशकार यहाँ की विशेषता है। यद्यपि बाज में लय की प्रधानता होती है परन्तु मधुरता किन्ही अंशों में कम नही होने पाती। सुन्दर मुखड़े, चक्करदार परने, चार बाग और फर्द यहाँ के कलाकारों की विशेष वादन शैली है और दादरा कहरवा और रूपक का बाज यहाँ पर जन साधारण के आनन्द का विषय है। बनारस में लखनऊ घराने का ही बाज बजाया जाता है। यहाँ के आदि गुरू, जहाँ तक मुझे ज्ञात हुआ पं० बल्देव प्रसाद जी, ने अपने उस्ताद की आज्ञा पर तबला पूज दिया था अतः शिष्यों को सिखाने के लिये लकड़ी के तबले बनवाये। इस कारण बोल मधुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न होकर कभी कभी भारी हो जाते हैं। बायें की भी लचक कुछ रंजक कम होती है। नृत्य-कर्म के बाज में दाहिना काम पखावज का होता है और बायाँ तबले का अतः यहाँ के बाज में अधिकता, छंद, गत और लड़ीदार परनो की होती है नृत्य-अंग लय प्रधान होने के कारण यहाँ की विशेष कला है। पंजाब अंग तो वास्तव में पखावज के ही बोल है उन्हीं को बन्द बजाकर कर तबले में शामिल कर दिया है। वही लम्बी लम्बी परने और गतें, आड़ी, कुआड़ी आदि लय के बाँट बजाने की पृथा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कला क्षेत्र में तबलें को विशेष स्थान प्राप्त हो गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रस और राग

रस अन्तःकरण की निधि है। मनुष्य इसी के गुणानुसार देवत्व अथवा दानवत्व को प्राप्त होता है। स्थूल जगत इन्द्रियों द्वारा बोध-गम्य है। उसका ज्ञान प्राप्त करना और व्यापार स्थापित करना संसार-चक्र है जो सदैव गतिमान है। इन्हीं इन्द्रियों की सहायता से मन निरन्तर आनन्द की खोज में तल्लीन रहता है। शरीर को नाना प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। इन्हीं फलों का रस, चाहे वे सूक्ष्म हों अथवा स्थूल, अन्तःकरण में संचित होता है और मनुष्य-जीवन का शोषक अथवा पोषक होता है। वास्तव में चरित्र-निर्माण का तत्व ही यह रस होता है अतः इसका दायित्व सम्बन्धित व्यक्ति पर न होकर उसके माता-पिता एवं गुरू पर होता है। अनुकूल वातावरण एवं परिस्थितियों में पालन-पोषण होने पर सरस जीवन ईश्वरीय देन कहलाने लगती है। अतः सिद्ध होता है कि मनुष्य जीवन सरस अथवा नीरस बनाना अधिकांश अभिभावक की बुद्धि एवं भावना पर आश्रित है।

राग यदि एक वृक्ष है तो रंजकता उसका फल है। जो अवधि प्राप्ति होने पर परिपक्व अवस्था को प्राप्त होता है और पुनः अपने जन्मदाता जैसे अनेकों का जन्मदाता हो जाता है। 'एकोहं बहुस्यामि' सत्य की पुष्टि हो जाती है। इसी प्रकार राग एवं रंजकता एक दूसरे के जन्मदाता हैं। वृक्ष से फल प्राकृतिक नियम है। परन्तु फल से इच्छानुसार वृक्षारोपण करना बुद्धि व्यवसाय द्वारा प्राकृतिक नियम का अनुशीलन होता है। मनोरञ्जन से हृदय सरस हो जाता है अर्थात् सद्भावना का अंकुर उत्पन्न होने की सम्भावना हो जाती है। वयोवृद्ध ऋषियों ने मानवीजीवन को सरस बनाना अपना कर्त्तव्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझा। उस विषय में खोज की और अन्तर्हित राग (प्रेम) को वाणी द्वारा एक स्वरूप दिया। उस स्वरूप-गठन के लिये आवश्यक अंगोपांगों की खोज की और ऐसे सिद्धान्त निर्धारित किये कि रंजकता अवश्य उत्पन्न हो जो शनैः शनैः मनुष्य जीवन को प्रभावित कर सरस बना दे। अथवा यथोचित भाव उत्पन्न कर सोई हुई भावना को जागृत कर दे और मनुष्य को कार्यरत होने की प्रेरणा मिले।

रञ्जकता मन का विषय है अतः स्थूल जगत में जन साधारण के उपयोग का साधन है। सामाजिक बन्धन इसी रञ्जकता के आधार पर सरस अथवा नीरस होते हैं। स्थूल से उपराम हो, सूक्ष्म में प्रवेश करने के हेतु बाह्य नाटक की इति श्री हो जाती है। रस का संचार होता है मुद्रा शान्त हो जाती है। सम्पूर्ण जगत 'जादू के कटोरे में आ जाता है ! मन को चित् का पद प्राप्त होता है अतः इन्द्र-जाल अथवा ऐन्द्रिक जाल से मुक्ति हो जाती है। बुद्धि ने भी विश्राम कर पुनः शक्ति संचार कर लिया। वर्णन करने के लिये तो यह क्षणिक विषय है परन्तु वास्तव में इसके लिये घन्टों की आवश्यकता है। यों तो हठयोग द्वारा अथवा ज्ञान योग द्वारा भी योगीजन इस अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं और वर्षों तक इसी अवस्था में रह सकते हैं परन्तु यह दो मार्ग जन साधारण के लिये असम्भव हैं। सांसारिक मनुष्य तो राग की रञ्जकता के आधार पर ही अपने में आनन्द और स्फूर्ति की अनुभूति कर सकता है। कारण यह है कि वह तो जीवन-चर्या के बन्धन में एक श्रांत पथिक की भाँति है उसको पुनः स्वस्थ होकर अपने काम में लगना होता है।

राग की परिभाषा के अनुसार राग का रञ्जक होना आवश्यक है परन्तु अनिवार्य नहीं। वर्तमान राग गायन प्रणाली ने सिद्ध कर दिया है कि रञ्जक न होने पर भी राग शास्त्रीय-आधार पर प्रमाणित हो सकता है और कला कोविद उसको इसी कारण पठन-पाठन के अन्य विषयों के साथ-साथ आदरणीय स्थान देते हैं। यद्यपि मानसिक-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विह्वलता उस संगीत के द्वाराघटने की अपेक्षा बढ़ती अधिक है। शास्त्रोक्त होने के कारण विद्वत् समाज में मानस-मन्थन का विषय प्रधान बन जाता है और अन्त में ध्यान-योग द्वारा समाधि के स्थान पर कौतूहल-पूर्ण अन्तर्द्वन्द्व एवं मन-मुटाव का साधन बन जाता है। सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने पर प्रतीत होगा कि संगीत-शास्त्रोक्त पारिभाषिक-शब्दों का गूढ-तम ज्ञान ही रस-मूलक है। नाद की परि-भाषा को कण्ठस्थ कर लेना इतना लाभदायक नहीं जितना कि उस परिभाषा के द्वारा उसके स्वरूप को कण्ठ सिद्ध कर लेना। जहाँ पर बोलने में कण्ठ और हो और गाने में कण्ठ और तो परिणाम दुरंगा-होता ही है जब तक नाद का वास्तविक स्वरूप आचरण में में दृष्टि गत नहीं होता तब तक रस का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। मूर्तिकार सांसारिक सौन्दर्य का अध्ययन करता है। सूक्ष्म पर्यवेक्षण के पश्चात् स्मृति के आधार पर, सुन्दरतम कल्पना के द्वारा, सानुपातिक गठन कर मनोरम मूर्ति प्रस्तुत करता है। अवश्य जन-साधारण की दृष्टि आकर्षित होती है परन्तु अधिक देर के लिये नहीं क्योंकि उसमें प्राण नहीं है। ठीक इसी प्रकार राग में छन्द भी सुन्दर है, स्वर-सम्मिश्रण भी शास्त्रोक्त है, अतीत में सुने हुए रंजक स्वर-समुदाय भी गायक के कण्ठ से निकल रहे हैं, स्वयं की कल्पना भी क्रियाशील है, स्वर लय की क्रीड़ा भी चल रही है। इतना होने पर राग केवल बुद्धि-प्रधान रह जाता है, कारण स्पष्ट है कि नाद ब्रह्म को अन्तःकरण के पवित्र रस में मज्जन कराने के पश्चात ही उसमें ज्योति उत्पन्न होती है यदि वह ज्योति नहीं तो राग का भी वही प्रभाव होता है जो उपरोक्त मूर्ति का। राग दर्शन एवं गायन वास्तव में सर्वोच्च मानस-पूजा है। इसमें चरित्र एवं बुद्धि-प्रधान कल्पना का सुन्दर समावेश होना अत्यावश्यक है। यह कार्य अखण्ड साधना द्वारा सिद्ध होता है, परन्तु आँख मूँदकर मरे मन से नहीं। सिद्ध का ज्ञान तथा साधक की श्रद्धा दोनों मिलकर साधक को सिद्ध बना सकते हैं। शास्त्रीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञान स्मृति को जीवन प्रदान करता है परन्तु पारिभाषिक शब्दों का शुद्ध स्वरूप गुरु-मुख से ही प्राप्त हो सकता। अतः वर्तमान राग-गायन में नीरसता के दोषी वे तपस्वी कदापि नहीं है जिन्होंने गुरु को ईश्वर का स्वरूप मान कर उनके कथनानुसार अपने को तपस्या में संलग्न कर दिया दिया परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी बुद्धि-बल से पिछली भूलों को सुधारने का अधिकारी होता है जिससे भविष्य में पतन का मार्ग बन्द हो जाय। आज भी संगीत कार यदि यह बीड़ा उठा लेते हैं कि राग में रंजकता खोज कर ही मानेंगे तो सफलता अवश्य मिलेगी परन्तु बलिदान के पश्चात।

राग क्या है ? नाद का एक विशेष चलन अथवा गति है। अज्ञान में स्वतः संचालन होता है। ज्ञान में वैज्ञानिक नियम पर नृत्य होता है। यही नियमित-संचालन अथवा नृत्य नाद का प्राण अथवा ज्योति है जो व्यक्तिगत विभिन्नता के कारण नाना रूपों में कर्ण स्पर्शी होती है। श्रुत्यंतरों पर तीव्र, शुद्ध एवं विकृत रूप में स्थित होना अथवा क्रीड़ा करना राग के स्वरों का स्वरूप होता है। क्रियात्मक रूप में स्वरों के स्वरूप एवं नाद की गति का स्पष्टीकरण करना स्वमेव आनन्द का विषय है। विवेचनात्मक विवरण तो सोने में सुगन्ध का काम करता है। ग्राम और मूर्छना स्वरों के ठिकाने हैं। कहते हैं गंधार ग्राम स्वर्ग को चला गया वेचारे स्वरों का गाँव ही उजाड़ दिया। छुटकारा मिल गया अपनी कमजोरी को छुपाने से। संगीत की हानि हुई परन्तु उस्तादी में खलल नहीं आया। मूर्छना तो वर्तमान संगीत में प्रश्न-विनोद है गायन में तो उसका स्वरूप यदि कहीं भासता है तो मुसलमान गायकों में अथवा चित्रसंगीत में। इसी कारण वहाँ कुछ रस भी प्राप्त होता है। शेष संगीत तो स्वर-चर्खी अथवा चर्म-तरंग ही है। धारणा यह है कि जितना समझ में न आवे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उतना ही राग कठिन है। इतना सब कुछ समझ लेने के पश्चात् देश काल के आधार पर राग का विवेक होना आवश्यक है। देश का सम्बन्ध समाज एवं वातावरण से है। काल का सम्बन्ध सूर्य एवं ऋतुओं से है। और देश और काल दोनों का सम्बन्ध गायक के सामाजिक तथा शारीरिक जीवन से है। राग का पूर्वाङ्ग अथवा उत्तरांग होना इन्हीं दो कारणों पर विशेष रूप से आधारित होता है। गायक की व्यक्तिगत साधना के लिये सूर्य-काल के अनुसार रागों का पूर्वाङ्ग उत्तराङ्ग होना श्रेयस्कर है। अतः इसी आधार पर रागों का समय निर्दिष्ट हैं। इस सिद्धान्त पर साधना करने वालों को कंठ रोग नहीं होता रस का संचार होता है। तभी वे लोग इस योग्य हो पाते हैं कि वर्षा अथवा वसन्त ऋतुओं में हर समय अपने गायन से कोलाहल-पूर्ण समाज को मन्त्र-मुग्ध कर सकते हैं।

यहाँ पर एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। स्वर और लय का अविच्छिन्न सम्बध है। यदि इस सम्बन्ध का ज्ञान नहीं है तो राग के वादी, सम्वादी, अनुवादी और विवादी स्वरों का यथोचित रूप प्राप्त होना कठिन है। राग और रसोई में रसोत्पत्ति सानुपातिक सम्मिश्रण पर निर्भर है। अन्धाधुन्ध राग का गाना उसी प्रकार हानिकारक हो सकता है जिस प्रकार भोजन के पश्चात् स्नान अथवा व्यायाम। रसोत्पादन तो तभी सम्भव है जबकि पूर्ण वृक्ष के पके फल से निकाला जाय। सूखी जड़ अथवा बीज में रस नहीं होता है।

अन्त में केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि राग का विस्तार अपनी मर्यादा के बाहर जाने से अनधिकृत हो जाता है। वह किसी दूसरे राग की मर्यादा में अवश्य प्रवेश कर जाता है। अतः यदि राग-गायन के समय न्यास, सन्यास विन्यास और अपन्यास का विवेक नहीं रहता तो राग अवश्य दोष-पूर्ण हो जाता है। ज्ञानी को ज्ञान के द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अरुचि हो जाती है और जिज्ञासु को गायक की विह्वलता के कारण खिन्नता का भास होता है। अतः राग और रस का जो अलौकिक सम्बन्ध हमारे पूर्वजों ने खोज करके, जन-कल्याण के हेतु प्रतिपादित किया है केवल वाकपटुता का विषय रह जाता है। साधक भविष्य के स्वयं निर्माता हैं। चाहें तो दोनों को एक बन्धन में बाँध सकते हैं और चाहें तो वर्तमान विच्छेद का समर्थन करते रहें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत-सम्मेलन

लाल कीचड़ में फंसे पड़े थे !! जीवन-यापन सबसे बड़ा धर्म है। धर्म के स्वनाम धन्य ठेकेदारों को इतनी फुर्सत कहाँ थी कि उन लालों को स्थानान्तर कर उनका वास्तविक मूल्यांकन करें या करावें। उनकी पूँजी तो धर्म सनातन की जर्जरी ढोंगी आडम्बरों से आच्छादित है, बैठे हैं अन्ध-विश्वासी धर्मावलम्बी, शिखा सूत्र की पतवार लिये हुये, आदेश पर दो चार हाथ मार देते हैं। यही उनका जीवन-संग्राम है। क्योंकि उनके शत्रु तो मित्रों के शरीर में है। ज्ञान तो था कि 'स्वर ही ईश्वर है और संगीत, मोक्ष का सर्वश्रेष्ठ साधन है' परन्तु था सब कुछ पौराणिक। धर्म-भीरु समाज, संगीत को उस गर्त से मुक्त करने का साहस ही न कर पाता था। यवन अधिकारी अधिकांश में पतित हो चुके थे। कुछ धर्म-गुरुओं की विचार-धारा के अनुसार पतितों के समीप बैठने पर मनुष्य आक्षेप का विषय बन जाता था। फिर उन संगीतज्ञों का क्या कहना कि जिनको अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिये 'हम-प्याले और हम-निवाले' होना पड़ता था। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वे कलाकार जो संगीत के सच्चे सेवक थे वास्तव में चरित्रहीन थे। जो कुछ था नाटक था। क्योंकि जीवन लीला वास्तव में सांसारिक दृष्टिकोण से अनिवार्य कला है। वे कलाकार तो उस कीचड़ में कमल के समान थे। सरस्वती माँ का मन्दिर सजीव रखना परम कर्त्तव्य था, अन्यथा साधन क्षेत्र ही नष्ट हो जाता। उनका मन संगीत-सुरभित था अतः कभी उस नर्क में फँसना उचित नहीं समझता था। जाय ती जाय कहाँ ? तथा कथित हठ योगी प्राणायाम साधना के मिस नाक और कान दोनों बन्द किये बैठे थे। मन स्वार्थ-चिन्तन में लवलीन था। अतः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन भ्रमरों की सुरभित ध्वनि इन योगियों के मस्तिष्क को किसी प्रकार भी स्पर्श न कर सकी। फिर उद्धार और कौन कर सकता था।

दक्षिण-पवन आई और गई, ले गई सुरभित-ध्वनि की गूँज; सुदूर भ्रमरों में उसके श्रोत-दर्शन की भावना जाग्रत हुई। एक भव्य मूर्ति सम्वेदना से द्रवित हो उद्धार-कार्य में लवलीन हुई। पाखंड का चोला उतार फेंका। घुटने टेक कर पुलकित पलकों से कोमल-कमलों को चुन चुन कर गुलदस्ते बनाये जो भारत माता के कक्ष-वक्ष को सांगोपांग सुरभित एवं रमणीय बनाते जा रहे हैं। उन्हीं का नाम संगीत सम्मेलन है। भारतीय जनता के साथ-साथ, भारतीय-संगीत की समर्थक विदेशी जनता भी इसका आनन्द-पुष्प लूटने में किसी प्रकार कम नहीं। माँ सरस्वती का भंडार भी अखंड है। राज और समाज की उदारता भी चरम सीमा पर है। लूटें देशवासी और विदेशी दोनों मिलकर लूटें। परन्तु इतनी उदारता तो घातक सिद्ध हो सकती है। मात्रा से अधिक भोजन करने पर कुपच, मदाग्नि एवं जीर्णज्वर आक्रमण कर बैठते हैं। संगीत कला की सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। साधक तो जीवन पर्यन्त उसको खा भी न सकेंगे फिर पचाने के लिये तो अनेक जीवन धारण करने पड़ेंगे। अतः साधक को अपनी बुद्धि और मन को सन्तुलित रखना ही लाभ-प्रद हो सकता है। गुरू-शिष्य परम्परा में यह गुरू का कर्त्तव्य होता था। अब तो शिष्य ही नहीं होते सभी गुरू होते हैं। अतः संगीत-सम्मेलनों द्वारा की गई अभूतपूर्व सेवा को, संगीत की वर्तमान, नतमुख प्रगति से किसी प्रकार सम्बन्धित कर दूषित नहीं किया जा सकता।

सम्मेलन की वैज्ञानिक-प्रणाली से पूर्व आविष्कर्त्ताओं के मनो-वैज्ञानिक-विधान एवं कार्यशीलता की सराहना करने से ही सम्मेलन का निरूपण सिद्ध हो जाता है। प्रातःस्मरणीय श्री भातखण्डे जी तथा श्री बिष्णु दिगम्बर जी के परिभ्रमण के द्वारा अर्धसुप्त जनता को चेतना प्राप्त हुई। तपस्या के तेज ने दर्शकों को उनका भक्त बना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया। सङ्गीत-साधना के चमत्कार ने जन पर मोहिनी डाल दी। प्रेमीजन प्रभावित हुये। गोष्ठी सफल हुई। अतीत के आनन्द ने जनता से मूक आवेदन किया। गोष्ठी अथवा समारोह का आयोजन अनिवार्य हो गया। कलाकारों के प्रति जनता के हृदय में उत्सुकता बढ़ी। परिमल-पराग के आदान-प्रदान द्वारा सद्भावना का गर्भाधान हुआ। विषमता का क्षेत्र उत्तरोत्तर संकुचित होता गया। यत्र-तत्र सर्वत्र सङ्गीत नर्तन होने लगा। समय आने पर अनेक गोष्ठियों का समष्टिकरण किया गया और उनके विराट रूप को 'सम्मेलन' नाम से घोषित किया गया। यही, वैज्ञानिक-युग में, सङ्गीत का सर्वप्रथम विजयघोष था जिसमें राजा, नवाब और विद्वान मंडली सैनिक बने हुए थे। और सरदार थे वे ही 'कीचड़ में फँसे माई के लाल'। महान कलाकारों को विशाल जगत के दर्शन हुए। हृदय-कमल खिला। विद्वत्-समाज में कुत्सित भावनाओं को तर्क एवं न्याय के आधार पर कोई स्थान ही नहीं रह जाता। अतः पारस्परिक मिलन द्वारा संगीत एवं समाज एक दूसरे को अपनाते गये। धर्म धुरन्धरों का मान भंग हुआ, वे भी संगीत की शरण में आये परन्तु नतमस्तक होकर नहीं, सतर्क होकर आये। अतः मर्मस्पर्शी रहस्य उनके लिये आज भी शून्य में है।

उपरोक्त गाथा तो अत्यन्त सरल है परन्तु नियोजन एवं निष्पत्ति-करण एक महान संघर्ष था। धीर वीर एवं निर्भीक महापुरुष ही इस कसौटी पर खरे उतर सके। यदि भावना की पवित्रता, एवं चरित्र की निर्मलता के साथ २, अखंड तपस्चर्या न होती तो कदाचित इस आन्दोलन के आधार-स्तम्भ ही डगमगा कर गिर जाते और यह फुलझड़ी झूंड़ की आग बन कर झड़ जाती। राजनीतिक कूटनीतियों द्वारा पतित किये गये राजा और नवाबों की चरित्रहीनता देश के धन और ऐश्वर्य पर विदेशियों का डाका, भारतीय-संस्कृत, विद्या एवं कला पर कुठाराघात, हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य का बीजारोपण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्तर और दक्षिण की पौराणिक विभिन्नता—इन विरोधी परिस्थितियों में जबकि अधिकांश कलाकार अशिक्षित होने के साथ २ धर्म के अन्ध-विश्वासी भी होते थे, पारस्परिक प्रेम एवं सम्वेदनामयी सहानुभूति का विनिमय असम्भव तो नहीं परन्तु दुष्कर अवश्य था। अतः सम्मेलनों का स्वरूप बहुत कुछ कठिनाइयों के पश्चात् निखर कर प्रकाश में आया।

तदुपरान्त महत्वपूर्ण बात यह हुई कि उत्तरोत्तर सम्मेलन का स्वरूप स्थाई एवं व्यापक होता गया। देशीय राजा और नवाबों के साथ २ नगर सेठों ने भी धन से पूर्ण सहयोग प्रदान किया। कलाकारों को खुली हवा में साँस लेने का अवसर मिला। प्रशंसक आलोचकों ने मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर कलाकारों की कला में चार चाँद लगाये। यद्यपि भत्र-प्रत्ययों कि कला गायक और श्रोता दोनों के लिये, गले बाजी से आगे पीछे और कुछ न होती थी। कारण था वैज्ञानिक अध्ययन की कमी। परन्तु मनोरञ्जन का विषय अवश्य होता था। श्रोतागणों के खोज-पूर्ण कौतूहल ने एवं जिज्ञासुओं की कला-साधना की अभिलाषा ने जनता और कलाकार में सम्पर्क का सूत्रपात्र घनिष्ट किया। कहीं ऊँचे पैमाने पर कहीं निम्न स्तर पर सम्मेलनों का बोल-बाला होने लगा। इलाहाबाद, बंबई, कलकत्ता, जालन्धर, देहली और बड़ौदा आदि स्थानों में, तात्पर्य यह कि प्रति वर्ष कहीं न कहीं सम्मेलनों का आयोजन होना एक परिपाटी बन गई। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें हानि का नाम ही नहीं, लाभ ही लाभ है। बहुधा व्यवस्थापकों का दृष्टिकोण आर्थिक लाभ का समर्थक होता चला आ रहा है परन्तु आधार उसका भी सम्मेलनों की सफलता ही है। इस प्रकार कलाकारों को उत्तम समाज, धन मान एवं प्रतिष्ठा, जिज्ञासुओं को कला और व्यवसायियों को अर्थ लाभ होता रहा जिसके कारण सम्मेलनों की सर्वप्रियता लोक-मान्य हो गई। अ:त वे सामयिक-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्मेलन अब वार्षिक-अधिवेशन का रूप धारण कर चुके हैं। और उन अधिवेशनों में गवेषणात्मक विवेचनों द्वारा संगीत के वास्तविक तथ्यों पर विचार-विनिमय किया जाता है। पत्र तथा पत्रिकाएँ भी उक्त विषयों को लोक-कल्याण का साधन मान कर संगीत की सेवा करना अपना धर्म समझते हैं।

मौलिकता पर किसी का प्रतिबन्ध नहीं। कूप-मंडूक का संसार उसकी ज्ञान-दृष्टि में सर्वश्रेष्ट एवं विशाल होता है। मोह के कारण अहंकार, सत्य की अपेक्षा अधिक बलिष्ट हो जाता है। मौलिकता के विरुद्ध प्रतिशोध की भावना जाग्रत होकर कला के स्थान पर कलह का सृजन करने लगती है। संभव है नर पशु बन जावे। रोग का निवारण अत्यावश्यक है। इसका उपचार है प्रतियोगितात्मक निर्णय, जिसके द्वारा प्रत्येक कलाकार की कला का मूल्यांकन किया जा सकता है और गुणीजनों के बहुमत द्वारा सन्मार्ग-निर्देशन भी प्राप्त हो सकता है। अतः वैमनस्य एवं विद्रोहात्मक भावना सदा के लिये निर्मूल हो जाती है। विशेष बात यह है कि प्रतियोगिता में पुरस्कार प्राप्त करने की लालसा ने न मालूम कितनों को कलाकार बना दिया। आकाशवाणी में तो इसका एक विभाग स्थापित हो गया है। उस विभाग के द्वारा प्रतियोगिता एवं सम्मेलन के कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं और विजेता कलाकारों को यथोचित रूप से पुरस्कृत किया जाता है।

साक्षात् सम्मेलन का दर्शन एवं श्रवण जितना चित्ताकर्षक होता है उतना आकाशवाणी का नहीं। कारण यह है कि कलाकार के हाव भाव एवं मुद्रायें भी अपना विशेष महत्व रखती हैं और नृत्य तो रेडियो पर होना न होना एक सा ही होता है अतः अब भी जब कि प्रति मास धुरन्धर कलाकारों का गायन आकाशवाणी से सुना जा सकता है, स्थानीय संगीत-सम्मेलन एवं प्रतियोगिता नगर-निवासियों के विशेष मनोरंजन का कारण होता है। यद्यपि व्यवसायिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दृष्टि-कोण से इस विराट एवं निरंतर सफलीभूति योजना में शिथिलता आ सकती है परन्तु फिर भी वास्तविकता अपना स्थान नहीं छोड़ती। नित्य नवीन संसार का सृजन होता है। रुचि-वैचित्र्य इस नवीनता का मूल-मंत्र है। एक ही राग के स्वरूप में कलाकार की विचित्र-रुचि के प्रभाव पड़ने से अनेक नवीन संसारों का दर्शन हो जाता है। सारांश यह है कि सङ्गीत-सम्मेलन का जीवन मनुष्य के सामाजिक जीवन से चिरकाल के लिये सम्बद्ध हो चुका है और यही श्रेयस्कर भी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय संगीत में 'घरानों' की परम्परा

'घराना' शब्द, सङ्गीत से सम्बन्धित कोई पारिभाषिक महत्व नहीं रखता। सामाजिक दृष्टिकोण से इसका अर्थ-क्षेत्र अत्यन्त संकुचित प्रतीत होता है। कदाचित् साहित्यज्ञान का अभाव इस शब्द के प्रचलन का कारण हो अथवा तत्सम्बन्धित समाज को 'वंश' 'खान्दान' अथवा 'परम्परा' शब्दों के प्रयोग करने की स्वतन्त्रता न हो यह भी सम्भव हो सकता है। अस्तु भावार्थ पर ध्यान देने पर विदित होता है कि उसमें कोई नवीनता नहीं है। भक्ति-काल में सङ्गीत कला की परम्परा के आधार 'वाणी' एवं सङ्गीत विद्या के आधार 'मत' माने जाते थे। वैदिक काल में तो सङ्गीत का नाम ही मार्गीय-संगीत था। इससे तात्पर्य होता था कि संगीत-साधन विशेष मार्ग-निर्देशन के आधार पर की जाती थी। यही साधन के मार्ग वर्तमान संगीत में शैली के नाम से कहे जा सकते हैं परन्तु पिछली तीन शताब्दियों में कलाकारों के साहित्य-ज्ञान में इतनी हीनता आ गई है कि अधिकतर गीत अथवा गेय-काव्य अधूरा ही नहीं रह गया वरन् दूषित भी हो गया है। ऐसी दीन-हीन दशा में जब कि नैतिक पतन ही उनका मार्ग-निर्देशक हो, सुसज्जित साहित्य का लोप होना आश्चर्य की बात नहीं है वह तो अनिवार्य ही हो जाता है। इसी कारण वर्तमान शास्त्रीय संगीत सर्वांग सुन्दर नहीं है और उपेक्षा का विषय बनता जा रहा है।

भारतवर्ष और यवन-देशों के मध्य विचार-विनिमय और कलाओं का आदान-प्रदान ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर, अति प्राचीन अथवा चिरस्थित है। एक दूसरे की विशेषताओं को अंगीकार कर लेना भी असम्भव नहीं। परन्तु भारतीय-संगीत आध्यात्मक विद्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होने के नाते, समुद्र के समान अथाह एवं गम्भीर है अतएव उसमें अन्य-देशी संगीत को गर्भस्थ कर आत्मसात् कर लेने की अलौकिक शक्ति है। कदाचित सुलतान अलाउद्दीन खिलजी और उसके प्रकांड विद्वान कवि एवं दरबारी गायक अमीर खुसरो को, इस भारतीय महासागर को सागर समझ गागर में भरने की भावना जाग्रत हुई। अनुसन्धान-शाला में तख्त के ऊपर सुलतान और नीचे अमीर खुसरो, निरन्तर दो वर्ष तक गोपाल नायक का संगीत सुनते रहे। भारतीय-सङ्गीत की पृष्ठ-भूमि पर ख्याल-गायन का आविष्कार हुआ। सुलतान के समर्थन पर जनता की बुद्धि व्यभिचारिणी हुई, विवेक का ह्रास हुआ। शनैः-शनैः गोपाल नायक बलि-बेदी की ज्वाला में झुलस कर परम गति को प्राप्त हुए। नायक-वंश को दिल्ली छोड़नी पड़ी। उन्होंने मेरठ जिले की ग्रामीण जनता के आँचल में शरण ली और वैभव-पराभव के संसार से उपराम हो शान्त-रूप से संगीत और समाज की सेवा में रत हो गये। परन्तु परीक्षा अभी अधूरी थी। यमुना की प्रलयंकर कृपा ने उनसे सब कुछ छीन कर केवल प्राणदान दे दिया। मान-मर्यादा और धनधाम को बरबस त्याग, वे लोग अखंड पांडित्य की प्रतिभा को धर्मारूढ़ किये, मुज़फ्फ़र नगर ज़िले के 'किराना' गाँव में आकर बस गये। ब्राह्मण-वंश मुगल बादशाहों के विशेष-कृपा पात्र बनाये गये। जहाँगीर के शासन-काल में नायक-वंश से बरबस धर्म दान लिया गया और उनको खाँ साहब की पदवी से विभूषित किया गया। लज्जा और घृणा से लदी नाव बिना पतवार के चल पड़ी। सादिक अली खाँ के सुपुत्र बन्दे अली खाँ इन्दौर के महाराज के गुरु बने और किराने वाले कहलाये। कोल्हापुर वाले उस्ताद अब्दुल करीम खाँ और लाहौर वाले उस्ताद वहीद खाँ 'किराना घराने' के प्रतिभाशाली कलाकार हुये हैं।

ख्याल-गायन प्रणाली यद्यपि रोचक थी परन्तु गम्भीर न होने के कारण वास्तविक कलावन्तों में स्थान न पा सकी। अतः भारतीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सङ्गीत की ध्रुपद धम्मार की गायकी यवन-गायकों ने भी अपनाए रखी। मुगल सम्राट अकबर के समय से पूर्व ग्वालियर के राजा मानसिंह स्वयं ध्रुपद धम्मार के अच्छे ज्ञाता और गायक थे। उनके दरबार में हस्सू खाँ, हद्दू खाँ और नत्थू खाँ ध्रुपद धम्मार के श्रेष्ठ कलाकार थे। इन्हीं कलाकारों की शिक्षा के आधार पर ग्वालियर घराने की बहुत सी शाखायें फूटीं। सहसवान वाले, पटियाला वाले, अतरौली वाले, भिंडी बाजार वाले और गन्धर्व महाविद्यालय वाले—इन सबका सम्बन्ध 'ग्वालियर घराने' से है। प्रातःस्मरणीय श्री प० विष्णु दिगम्बर जी इसी प्रणाली के योगी कलाकार थे।

अकबर की राजधानी आगरे में, उसके दरबार में अन्य कलाकारों के साथ-साथ नायक बैजू, नायक बख्शू और हाजी सुजान खाँ भी थे। इन्हीं हाजी साहब के वंश ने ध्रुपद धम्मार की शैली के आधार पर ख्याल-गायन की शैली को पुनर्जन्म देकर उसका प्रचार किया। इसी शैली के प्रचार के कारण लगभग डेढ़ सौ वर्ष से ध्रुपद धम्मार गायन दिन पर दिन अप्रचलित होता गया। इसी वंश में कव्वाल बच्चे हुये। मियाँ शकर, मियाँ मक्खन ने ध्रुपद की तालों को बदल दिया और स्वरूप भी दूसरे कर दिये और उनको नई तालों में बाँध दिया और उनका नाम स्थाई और ख्याल रख दिया। अपनी कल्पना और उस पर अभ्यास ही नहीं वरन् अधिकार के साथ प्रदर्शन, श्रोतागणों के मनोरंजन का विषय बना और प्रचार बढ़ता गया। तत्पश्चात् तान और बढ़त की शैली उत्तरोत्तर बढ़ती गई। अकबर की मृत्यु के पश्चात् इस वंश के कलाकारों को आगरा छोड़ राज्याश्रय की खोज में निकलना पड़ा। कुछ लोग जयपुर गये और दरबारी गायक बन गये। वहीं पर बोल तान भी स्थाई-ख्याल में मिश्रित की गई। कुछ लोग दक्षिण की ओर गये। मैसूर में जाकर दरबारी गायक बन गये और कर्नाटक सङ्गीत में अपनी विशेषताओं के पुट दे दिये। इस प्रकार इस घराने में ध्रुपद, धम्मार, ठुमरी, टप्पा, ख्याल, ग़ज़ल,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कव्वाली, वर्तमान-सङ्गीत के लगभग समस्त अंग विद्यमान हैं। तानसेन परिस्थिति-वश अपनी तपस्या से डिगे। ध्रुपद धम्मार और बीनकारी ही इनके वंशजों का सङ्गीत रहा। इनके वंशज सैनी घराने के नाम से प्रसिद्ध हैं।

लखनऊ के नवाब आसफुद्दौला के पश्चात् वहाँ का दरबार सदैव सुन्दरी और सुरा से दूषित रहने लगा अतएव कलाकारों का सम्मान होना तो सम्भवतः स्वप्न था। सैनी घराने के बीनकारों की रामपुर दरबार में आवभगत हुई। उनके साथ-साथ ग्वालियर के और जयपुर इत्यादि के गायकों की भी गोष्ठी होती रहती थी। नवाब कल्वे अलीखाँ ने अपने पिता के शौक को जीवित रखा और उसमें उनकी एक विशेष शैली बन गई जिसके आधार पर वजीर खाँ के नाम से 'रामपुर घराना' बन गया। वजीर खाँ सैनी वंश में बीनकार थे।

अतः यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि भारतीय-सङ्गीत में 'घराने' की परम्परा वे खँडहर हैं जो अपनी तपस्या के बल पर निर्मित हुये, भारतीय-संस्कृति की उन्नत पताका फहराने के हेतु, परन्तु ईर्ष्या की अग्नि द्वारा भस्मीभूत कर गिरा दिये गये। भारत की अदूरदर्शी नीति, धार्मिक जटिलता एवं सामाजिक संकीर्णता पुनरुत्थान में विश्वास नहीं करती। तिनके बयार के बस उड़ रहे हैं। परन्तु फिर भी यह कदापि नहीं भुलाया जा सकता कि 'घराने' का अर्थ परम्परा से सम्बन्धित करना श्रेयस्कर है 'खान्दान' से नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्रीय-संगीत में तान का महत्व

भारतवर्ष के गवेषणात्मक सूक्ष्म के ज्ञान ने उसको संसार का गुरु रूप में नेतृत्व प्रदान किया है। भारतीय संगीत के प्रति भी विदेशियों की भावना सराहनीय है। परम्परानुसार गुरु के बचनों में अटल विश्वास के साथ-साथ अन्ध-विश्वास भी जीवन-घुटी में घोल कर पिला दिया जाता है। बुद्धि-व्यवसाय में शिथिलता आजानी स्वाभाविक है। भारतमाता की ऐसी होनहार सन्तान के कानों में यदि गूँज जाता है कि ध्रुपद धमार में तानें नहीं होतीं अथवा नहीं ली जातीं, तो अधिकतर इन अनन्य भक्तों को इस कथन की पुष्टि करने के हेतु किसी तर्क अथवा प्रमाण की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती क्योंकि गुरुजनों के वचनों में विश्वास तो उनका सांस्कारिक स्वभाव बन चुका होता है। परन्तु यदि कोई स्वयं, इस विषय पर निम्नांकित धारा प्रवाह के अनुसार बुद्धि-व्यवसाय पुनः जागृत किया जाये तो आशा है कि गुरुजनों के वचनों में, तथा-कथित गुरुजनों के विचार-हीन शब्दों ने जो, हंसों में कौवे के समान स्थान प्राप्त कर लिया है अवश्य प्रत्यक्ष हो सकेगा, और हमको सरस्वती माता की सच्ची सेवा करने का भी अवसर कभी न कभी अवश्य प्राप्त हो सकेगा।

ध्रुपद-धमार-गायन को शास्त्रीय संगीत का परम प्रधान अंग माना जाता है। और स्थाई-ख्याल का शास्त्रीयकरण करने की चेष्टाएँ की जा रही हैं जिसका कारण उसकी रंजकता और सुलभ साधना है। परन्तु वास्तव में वह शास्त्रीय-संगीत के नग्न चित्र का विकृत स्वरूप है जो शास्त्रीय-संगीत का नग्न अंग होने के कारण समाज का उपकार करने की अपेक्षा संगीत को उत्तरोत्तर विकार-पूर्ण बनाता चला आ रहा है। अतः उसको वर्तमान शैली के आधार पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्रीय-संगीत का अंग कह कर बोध करना उस समय तक न्याय-संगत प्रतीत नहीं होता, जब तक कि वह शास्त्रीय-नियमों का पूर्णः रुपेण अनुसरण न करें। तान इस स्थाई गायन का प्राण है। यदि उसको निकाल दिया जाये तो इस गायन शैली का अन्त हो जाता है। 'महिमा घटी समुद्र की रावण बसे परोस' के उदाहरण पर स्थाई-ख्याल गायन के साथ-साथ यदि तान का बहिष्कार कर दिया जाता है तो निःसन्देह निर्णयकों की संकुचित विचार-धारा का दोष है न कि तान का।

तान तो सुसंस्कृत-साहित्य-सुरसरि की एक परम पावन लहरी है जो 'तन्' धातु से उद्भूत हो, संगीत को रोमकूपों द्वारा सांगोपांग सिञ्चन कर, परम पवित्र एवं निर्मल बनाती है; विकास-क्षेत्र में निर्देशक बनकर, वीणा की झंकार अथवा स्वर लहरी की छाया का रूप धारण कर, साधना की सफलता पर प्रमाण-पत्र जैसी छाप लगाती हुई परम तत्व आकाश में लय हो जाती है। परन्तु उसकी स्मृति अमिट छाप होती है जो सफल साधक को तानसेन के नाम से प्रसिद्ध कर चुकी है। संगीत-सम्राट-तानसेन का जातीय नाम त्रिलोचन मिश्र था। परन्तु ग्वालियर के राजा 'मान' जो ध्रुपद-धमार के बड़े धुरंधर विद्वान और गुरु थे, उनके सुपुत्र विक्रमादित्य ने त्रिलोचन मिश्र की तान से प्रसन्न हो उनको 'तानसेन' की पदवी से विभूषित किया। यह सर्वसम्मानित तथ्य है कि तानसेन ध्रुपद धमार गायन के विशेषज्ञ थे। उनके गायन में 'तान' अवश्य थी और वह भी ऐसी कि जिसको अद्वितीय अथवा 'लासानी' कहा गया है; जिसका अर्थ है 'तान का शरीर' प्राण, बाज अथवा सेना। इसी विषय में महात्मा तुलसीदास के भावोद्गार को भी व्यक्त करना, यद्यपि काव्य दृष्टि में अतिशयोक्ति अलंकार है, परन्तु प्रस्तुत विवेचन में समर्थक एवं सहायक तर्क सिद्ध होता है:—धरा मेरु सब डोलते तानसेन की 'तान'। एक और दोहार्धः—तानसेन की 'तान' में सभी तान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मस्तान। उपरोक्त कवितांश तानसेन के गायन में 'तान' की विशेषता पर ही मुग्ध होकर लिखे गये हैं। अतः शास्त्रीय-संगीत का आधार और चमत्कार दोनों में ही तान की प्रधानता और विशेषता है। ऐसी व्यापक तरंग का प्रयोग वर्जित सुनकर, एक ठेस सी लगती है। संगीतमयी कल्पना अतीत के उन राजदरबारों में, तानसेन की उस तान को सुनने के लिये लालायित हो, पगली सी घूमती फिरती है कि जिसने राजमुख से पुनर्जन्म ले संगीत सम्राट के अमर मुकुट में वास किया है। साहित्य-सम्राट तुलसीदास को द्रवित कर देने वाली, यवन-सम्राट अकबर को दास बना लेने वाली, संगीत-सम्राट तानसेन की वह तान-त्रिवेणी यदि आज बहिष्कृत न होती तो निःसन्देह संगीत-सागर रसातल को न चला जाता। गंगा यमुना की अमर धारा के साथ इस सरस्वती का संगम, न केवल भारतवर्ष, अपितु समस्त सभ्य जगत के व्यक्तिगत तथा सामाजिक उत्थान का एक विशेष साधन सिद्ध होता और वह अमर होता।

ध्रुपद धमार में गमक और बोल तान को मान्य देने के प्रतिफल हमको उन गुरुजनों का आभारी होना शिष्टाचार का एक विशेष नाता है। परन्तु साधना प्रारम्भ में गमक और बोलतान का अभ्यास करना श्रेयस्कर प्रतीत नहीं होता। मेरु पर षड्ज का साधन करने के पश्चात् जब नाद गतिमान हो अन्य स्वर-स्थान पर स्थित होता है तो वह स्वर विस्तार अथवा 'तान' का प्रथम सोपान होता है। यह प्राकृतिक नियम है। इसी नियम के आधार पर 'उन्नचास' 'कूट तानों' का आविर्भाव हुआ है। जो शनैः शनैः मानसिक विकास द्वारा सरल तानों में परिणत होती जाती हैं। इन सरल तानों द्वारा कंठ में मधुरता का संचार होता है और संगीत स्वभाव सिद्ध हो कंठस्थ हो जाता है। मेरु को लय के आधार पर खंड करने से गमक का स्वरूप प्रदर्शित होता है उसी को प्रबल कर देने पर गमक की तान प्राप्त होती है। यदि सरल तानों द्वारा कंठ में मधुरता और सरलता ने स्थान बना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिया है तो गमक की तान हृदय में इस प्रकार चलती भासती है जैसे जल में मस्त होकर मगर तैरता हो और तान का प्रत्यक्ष आनन्द इस प्रकार होता है जैसे कि जल प्रपात की घोर गर्जना और जल का 'कल-कल' निनाद। अन्यथा अनाधिकार चेष्टा तो इस प्रकार होती है जैसे किसी पेड़ की डाल पर बैठ कर बन्दर उसी को हिलाने के निमित्त उसी पर कूदता हो। गमक की तान अथवा बोलतान क्या होती है अच्छा खासा कोहराम होता है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो लतामंगेशकर के गायन में गमक की प्रधानता और प्रचुरता है जो तान रूप में जन मन हारी होती जा रही है। कारण स्पष्ट है सरल तान में गमक का निरूपण ही कला की विशेषता होती है।

सरल तानें, मेरु खंड की तानें अथवा दोनों का सम्मिश्रण राग-परिचय के आधार भूत होते हैं। यदि सरल तानों को शास्त्रीय-सङ्गीत से निकाल दिया जाता है तो सम्भवतः सङ्गीत तो हो सकता है परन्तु राग का धर्म जो कि स्थाई, अन्तरा, सञ्चारी और आभोग की तानों पर स्थित होता है नष्ट हो जाता है। पुनश्च सरल तानों के आधार पर ही सप्त स्वरों से भिन्न-भिन्न, ५०४० तानों के स्वरूप प्राप्त होते हैं जिनके द्वारा सङ्गीत का विकास अथवा विस्तार सम्भव है। यही तानें सर्व प्रकार के अलंकारों की जन्मदायिनी होती हैं। विलम्बित गायन में यही तानें अलंकार का रूप धारण कर कर्ण-गत होती हैं और जैसे-जैसे द्रुत-गमन व्यवहार में आता जाता है तैसे तैसे यही अलंकार, पलटे की, अथवा अलंकारिक तानों का रूप धारण करती जाती हैं। अतः स्पष्ट हो जाता है कि सरल तानों का समावेश शास्त्रीय-सङ्गीत में आद्योपान्त इस प्रकार क्रियाशील होता है कि जिस प्रकार जीवित मनुष्य की धमनियों में रक्त-प्रवाह होता है। रक्त-दोष अथवा न्यूनाधिक होना जिस प्रकार स्वास्थ्य पर प्रभाव डालता है उसी प्रकार तानें भी राग के स्वरूप, गुण और दोषों को प्रभावित करती हैं। कूट तान रूपी धमनियाँ और उनमें सरल तान रूपी रक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सङ्गीत की विराट्काया की अन्य धातुओं के पौष्टिक पदार्थ हैं। अतः इनका अधिकृत रूप से अभ्यास करना शास्त्रीय-सङ्गीत का हृष्ट-पुष्ट बीजारोपण करना होता है।

विवेचनात्मक ज्ञान के आधार पर कला प्रदर्शन करने के लिये तान का ज्ञान पूर्ण अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। किसी स्वर का सही ठिकाना ग्राम, मूर्छना एवं उसके स्वरूप द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। ग्रामों की तानों के अन्तर्गत स्वर के समस्त स्वरूप आ जाते हैं। उनमें यदि किसी प्रकार की विशेषता होती है तो मूर्छनाएँ उसका स्पष्टीकरण कर देती हैं। यह भी एक विशेष प्रकार की तानें होती हैं। उदाहरण के लिये कल्याण और विलावल के रिषभ और गंधार। एक तीव्र है तो दूसरा शुद्ध। यदि तान द्वारा इसको स्पष्ट करना हो तो पहले विलम्बित में मूर्छना द्वारा व्यक्त करना होगा जो पुनः स्वयमेव तान रूप में व्यवहृत हो सकेगा। अतः यह कहना कि 'तान ध्रुपद धमार में वर्जित है' इस तथ्य का समर्थक हो सकता है कि उनका सङ्गीत 'मूर्छना-हीन' है अथवा उसको व्यवहार में लाते हुये भी उनको उसका साक्षात् ज्ञान नहीं है। इसी कारण ध्रुपद धमार कर्ण-कटु एवं क्लिष्ट सङ्गीत होता जा रहा है।

अन्त में इतना कहना अत्यावश्यक हो जाता है कि जिस प्रकार सभ्य समाज में, किसी विशेष कारणाधीन न होकर, किसी व्यक्ति को नग्न नृत्य करने पर, परिहास अथवा कौतूहल वश प्रशंसा प्राप्त हो जाती है तो हो जाय परन्तु समाज को उसका पुनरावर्तन असह्य हो उठेगा। ठीक यही दशा नग्न तान की भी होती है। पवन के एक झकोरे ने एक नवल युवती का आँचल झटक दिया। परन्तु नेत्रों में लज्जा, हाव-भाव में संकोच के साथ यदि नग्न अंग को पुनः अवगुन्ठन प्राप्त हो सका तो वह कवि के लिये कविता का विषय बन जाता है। ठीक इसी प्रकार यदि तान श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर नग्नावस्था को भी प्राप्त हो पुनः आवरणमयी होती जाती है, कहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इठलाती है कहीं द्रुतगामिनी हो भूल भुलैयों का जाल बुन देती है तो अवश्य ही वह सङ्गीतकार की शोभा और समाज की प्रेयसी होती है। अन्यथा सड़कों पर न मालूम कितनी अर्ध-नग्न भिखारनें दिन रात घूमतीं, पड़ी रहतीं और मर जाती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्रीय-संगीत एवं भाव-संगीत

भाव-सङ्गीत में, बुद्धि-विकास से पूर्व ही, शिशु के अन्तःकरण में सङ्गीत के संस्कारों का सृजन कर उनको सक्रिय बनाने की अलौकिक शक्ति है। बाल्यकाल में यद्यपि बुद्धि-विकास नहीं के बराबर होता है, क्योंकि वह तो बाह्य जगत का अवधि-प्राप्त अनुभव होता है, फिर भी वह बालक जो अपनी आवश्यकता को अपनी वाणी द्वारा व्यक्त करने के योग्य हो जाता है यदि कहीं से सङ्गीत अथवा गीत की कोई सार्थक पंक्ति सुन लेता है तो उसको बारम्बार गुनगुना कर अन्तर्हित आनन्द की अनुभूति करता है। भाव और अन्तःकरण का सम्बन्ध रहस्यमय है। उस सम्बन्ध को मनीषी सङ्गीतकारों ने अथवा कहिये हमारे पूर्वज ऋषियों ने अनुभूत कर स्मृति द्वारा, बोध-गम्य किया। परन्तु बुद्धि के द्वारा उस सम्बन्ध का न तो तद्रूप विश्लेषण ही हो सका और न स्पष्टीकरण ही हो सका। तथापि कुछ ऐसे संकेत अवश्य निर्धारित किये जा सके कि जिनके आधार पर सङ्गीत साधना करने के पश्चात साधक किसी न किसी अवसर पर उन अनुभव-गम्य तत्वों पर भी पहुँच सकता है कि जिनके व्यक्त करने में शास्त्र सर्वथा अशक्त होता है। बाल्यकाल का अन्तर्हित भाव-सङ्गीत साधक की साधना पर भी सफलता की छाप लगा देता है। सङ्गीतशास्त्र से अनभिज्ञ होने पर भी कोई-कोई बालक ऐसा सरल-सङ्गीत प्रस्तुत कर देते हैं कि शास्त्रीय गायकों को बच्चे की कच्ची आवाज़ के मिस अपनी दुर्बलता छिपानी पड़ जाती है। अन्त में निराशा-पूर्ण संतोष के साथ तर्क किया जाता है कि 'यह तो परमात्मा की देन है।' संसार की प्रत्येक वस्तु ही परमात्मा की देन है। बुद्धि और मन भी उसी की देन है। परन्तु उनका प्रयोग अथवा कर्म की स्वतंत्रता मनुष्य के स्वयं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के अधिकार में है। इसी परम रहस्य का नाना प्रकार से अध्ययन करना भारत की अनुपम संस्कृति है।

नाद के द्वारा आत्म-दर्शन एवं आत्म-चिन्तन के मूलतत्वों की प्राप्ति होती है। इसी नाद पर सुसज्जित होकर वाणी प्रचलित भाषा के क्षेत्र में पदार्पण करती है। तत्पश्चात् परिमार्जित होकर शिक्षित वर्ग में साहित्य का रूप धारण कर लेती है। विचार-विनिमय और भाव का स्पष्टीकरण इसके महत्व के समर्थक तत्व होते हैं। नाद का मुखरित रूप, स्वर, मनुष्य जीवन की एक विशेषता है और मानवी जीवन का अलंकार है जो परम मित्र के समान हर समय सहायक एवं उपयोगी सिद्ध हो सकता है। केवल भाषा अथवा साहित्य में भाव के स्पष्टीकरण की क्षमता अधिक होती है परन्तु उन भावों में प्रबलता एवं स्निग्धता का समावेश करने के लिये स्वर-संचालित अभिव्यक्ति ही परम उपयोगी सिद्ध होती है। केवल स्वर के आधार पर यदि भाव प्रदर्शन हो सकता है तो अधूरा होता है। केवल भाषा द्वारा स्पष्टीकरण सफल हो सकता है। परन्तु उसका परिणाम आवेश अथवा उदासीनता होता है। मनोरंजन यदि होता भी है तो क्षणिक होता है जिसको नहीं के बराबर भी कहा जा सकता है। स्वर एवं साहित्य अथवा प्रचलित भाषा का लय के द्वारा सानुपातिक समीकरण हो जाने पर ही भाव-व्यंजना परिपक्व अवस्था को प्राप्त होती है और संगीत का उद्देश्य सफलता को प्राप्त होता है। चाहे शास्त्रीय-सङ्गीत हो अथवा लोक-गीत भाव-गीत या सिनेमा-सङ्गीत सबमें भाव-मयी भाषा, प्रभाव-मयी वाणी और विभाव-मयी लय समान रूप से अपेक्षित है। इन्हीं का स्वभाव सङ्गीत के उत्थान तथा पतन का कारण होता है।

समाज को संगीत की हर समय आवश्यकता होती है। उसको मनुष्य के व्यक्तिगत संगीत से स्पष्ट रूप में कोई सम्बन्ध उस समय तक नहीं होता कि जब तक संगीतकार अपने संगीत के द्वारा उसकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात समाज की कुछ सेवा न कर सके। समाज की सेवा करने के लिये संगीतकार को सामाजिक संगीत की आवश्यकता पड़ती है जैसे भजन कीर्तन में भक्ति भाव के पद विवाहोंत्सवों में नाना प्रकार के समयोचित शृंगार वर्णन अथवा शृंगार रस के गीत। राजनीतिक सम्मेलनों के अवसर पर देश-भक्तों की अमर कथाएँ। तात्पर्य यह है कि सामाजिक प्रगति के अनुसार संगीत का वाँछित रूप भी अपनाना अवश्यम्भावी हो जाता है। वर्तमान समाज के प्राचीन कवियों के सवैये और कवित्तों से जी भर चुके हैं। रामायण पाठ, पाठशालाओं और विद्यापीठों में पोषित हो रहा है ठीक है परन्तु वर्तमान शैली को प्रचलित करने वाले कवियों को अधिक सम्मान प्राप्त हो रहा है। इसी के अनुरूप यद्यपि प्राचीन संगीत का पोषण हो ही रहा है भाव संगीत का प्रचलन भी दिन प्रतिदिन अधिक होता जा रहा है। सरल संगीत, सरल भाषा, सरल तान और सरल ताल के सरल समष्ठिकरण द्वारा हृदय को सरलता से आकर्षित कर लेता है। विज्ञ तथा अनभिज्ञ दोनों वर्ग के लोगों के लिये मनोरंजन का विषय होता है और समयानुसार यथोचित भावानुभूति होती है। संगीत के प्रति अभिरुचि एवं संगीतकार के प्रति सद्भावना का समागम होता है। इन सामाजिक बन्धनों में व्यस्त प्राणियों को इतना ही समय होता है कि संगीत को सुनकर मनोरंजन कर पुनः अपने कार्य में लग जावें। उनको इस विषय में खोज करने की आवश्यकता नहीं है कि अमुक संगीतकार के गायन में इतना आनन्द क्यों आता है ? वे तो केवल इतना जानना चाहते हैं कि किस संगीतकार के संगीत में अधिक मनोरंजन होता है। और ठीक भी है संगीत के द्वारा मनोरंजन से ही समाज का सम्बन्ध होता है। उनके प्रति संगीतकार का इतना कर्त्तव्य हो जाता है कि समाज को उससे किसी प्रकार की निराशा न हो अन्यथा उसकी ही हानि होती है। समाज तो संगीत को कुछ समय के लिये मोल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेकर छोड़ देना ही जानता है क्योंकि अपनाना बहुत कठिन है। अपनाने का साधन ही शास्त्रीय-संगीत होता है। एक बार तपस्या कर भाव-संगीत में ख्याति प्राप्त कर लेना आसान होता है परन्तु उसको जाने न देना यही कठिन समस्या है। इसीं समस्या को हल करने के निमित्त भाव संगीत को शास्त्रीय संगीत के समक्ष घुटने टेकने पड़ जाते हैं। और जो ऐसा नहीं करते उनको संगीत से हाथ धोने पड़ जाते हैं। संगीत को भाव पूर्ण एवं रंजक बनाने से पूर्व स्वर, लय, भाषा और वाणी को निरन्तर साधना द्वारा निर्मल करना और शक्तिशाली बनाना अत्यावश्यक है। यह उपचार भाव-संगीत के क्षेत्र का नहीं है। शास्त्रीय नियम के अनुसार साधना वाँछनीय है। भाव-संगीत का वास्तविक क्षेत्र तो समयानुसार परिस्थितियों के वशीभूत होता है परन्तु जो संगीतकार अपने कण्ठ का परिमार्जन किये रहते हैं उन पर विरोधी परिस्थितियों का प्रहार भी निष्फल हो जाया करता है। अतः अधिकृत रूप से कहा जा सकता हैं कि शास्त्रीय-संगीत संगीत के अन्य उपांगों का पोषक होता है।

यवन-संस्कृति के प्रभाव ने हमारे संगीत का रूप विकृत कर दिया है। इसी परिवर्तन के कारण शास्त्रीय संगीत की वास्तविकता एवं विशेषता वर्तमान युग में अतीत की गल्पगाथा मात्र रह गई है। भारत की समस्त विद्याओं तथा कलाओं का साधारण विभाजन दो वर्गों में होता चला आया है। गुरुजनों की साध्य तथा पुरजनों की साध्य। इसी को अधिक स्पष्ट रूप में विशेष योग्यता एवं साधारण ज्ञान की संज्ञा से बोध करते हैं। संगीत की विशेष योग्यता, अनुसंधान कार्य एवं चमत्कार-पूर्ण प्रदर्शन, जनसाधारण की शक्ति से परे की बात थी। इस साधना का समय ब्रह्मचर्य जीवन होता था अथवा सांसारिक बन्धनों से मुक्त तपस्वी एवं भक्तों का सन्यस्थ जीवन होता था। यही भव्य पुरुष संगीत के गुरु एवं प्रचारक होते थे। इन्हीं के द्वारा अपनी अनुभूतियों का शास्त्रीयकरण होता था। इस संगीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को सुनने वाले पुरजन भी बाल्य काल के संगीतज्ञ विद्यार्थी होते थे। परन्तु सांसारिक जीवन में बँधे होने के कारण अलौकिक संगीत की साधना के अधिकारी नहीं होते थे। उन लोगों का सङ्गीत देवालयों में देव पूजा के रूप में था, जिसमें भाव-पूर्ण भजन, स्तुति इत्यादि गाये जाते थे। यह सङ्गीत भी उस समय के प्रचलन के अनुसार शास्त्रीय-नियमों के आधार पर ही गाया जाता होगा परन्तु उसमें भावानुभूति का दृष्टिकोण शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा अधिक महत्व-पूर्ण होना अनिवार्य था। अतः यह सामूहिक सङ्गीत एक प्रवाह के रूप में गाया जाता था। शास्त्रीय-बंधन कुछ शिथिल हो जाना कोई चिन्ता अथवा हानि का विषय नहीं था। उसी प्राचीन परिपाटी के अनुसार अभी तक देवालयों में मंगला आर्ती से भोग तथा शयन-आर्ती तक का सारा कार्यक्रम भाव-प्रधान शास्त्रीय-सङ्गीत के द्वारा होता चला आ रहा है। गार्हस्थ्य-जीवन की अनेक झाँकियाँ ढोलक के गीतों में सुनाई पड़ती हैं। यह सब भाव-प्रधान-सङ्गीत का ही स्वरूप है जो अपने को भारतीय जनसाधारण के अन्तःकरण में छिपाये बैठा है। शास्त्रीय-सङ्गीत तो वास्तव में तानसेन के जीवन-काल ही में किनारा कर चुका था। यदि केवल शास्त्रोक्त होने में ही सङ्गीत की महानता मानी जा सकती है तो शास्त्रीय को समझना चाहिये कि वह सो रहा है और वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये कहना पड़ता है कि उसका जागना अभी कठिन प्रतीत होता है। भाव-सङ्गीत तो सर्वत्र एवं सदैव जाग्रत है इसी कारण वह अपने सम्बन्धित क्षेत्र में उत्तरोत्तर उन्नति के पथ पर बल एवं प्रभाव के साथ प्रगतिशील है।

विचारणीय दशा उन सेवकों की ही है जो संस्कारहीन कण्ठ के कारण अपने को गायन के अयोग्य पाते हैं परन्तु श्रद्धा में किसी प्रकार की त्रुटि न मिल सकेगी। बहुत से ऐसे विद्यार्थी देखने में आते हैं जो कि सङ्गीत को सरलता अथवा थोड़े संकेत के द्वारा ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त कर लेते हैं परन्तु श्रद्धा अथवा सेवा के स्थान पर बहाने बनाना भी उनकी एक कला होती है। इन दोनों वर्गों के विद्यार्थियों में, मेरी समझ से, प्रथम वर्ग का विद्यार्थी सुपात्र है और उसको विद्या देना नितान्त उचित है। सद्गुरु यदि शास्त्रीय-संगीत के मर्म को समझ उसी आधार पर शिष्य को शिक्षा देता है तो अवश्य ही एक दिन ऐसा आ जाता है कि वह निराश भक्त भी भाव-पूर्ण संगीतकार बन जाता है। साथ ही साथ, यह भी ध्यान रहना चाहिये कि वर्तमान भाव-संगीत के मूल में, सदा की भाँति शास्त्रीय-संगीत ही पोषक पदार्थ है। शास्त्रीय-संगीत के खँडहर अब भी इतनी शक्ति रखते हैं कि संस्कार-हीन को गायक बना सकते हैं तो उन भक्तों का भविष्य, जो सर्वाङ्ग सुन्दर सुपात्र हैं, शास्त्रीय-संगीत क्या बना सकता है! यह, साधक स्वयं उस अवस्था को प्राप्त होने पर जान सकते हैं, इससे पहले नहीं। इस कथन का तात्पर्य यह है कि यद्यपि भाव-संगीत अत्यन्त रोचक होता है, विद्यार्थी भी उसको सफलता-पूर्वक गा सकता है तथापि शास्त्रीय-संगीत की अवहेलना करना साधक के लिये हानिकारक ही सिद्ध होता है। उनमें साधक को खोज करने का मार्ग मिलता है, भाव-संगीत में मानसिक क्रीड़ा होती है अतः अनुसंधान कार्य विकृत हो जाता है। भाव-संगीत, शास्त्रीय संगीत का खोजा हुआ एक रूप होता है अतः सुन्दर होना तो आवश्यक है ही परन्तु उस ही में भुला जाना, बुद्धि पर कठोर आघात है जो आहत हो अथवा अनाहत, किसी न किसी रूप में, उसको संगीत से दूर कर देता है।

अन्त में एक शब्द कह देना उचित है कि शास्त्रीय-संगीत का क्षेत्र विज्ञ समाज है और भाव-संगीत का क्षेत्र जन साधारण, अतः विद्यार्थी वर्ग की साधना शास्त्रानुकूल तथा गायन समाजनुकूल होना हीं मंगलकारी है। इसी में संगीत की उन्नति का रहस्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पृष्ठ-भूमि संगीत

मनुष्य के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन से संगीत का अटूट सम्बन्ध है। इसी नैसर्गिक सम्बन्ध के कारण मनुष्य तथा समाज के अनुरूप संगीत में भी परिवर्तन होते आये हैं। एक समय था जब भारतीय समाज का जीवन आध्यात्मिक अनुशीलन के धारा प्रवाह में परिमार्जित हो उपासना में लीन रहता था, संगीत उस समय उपासना का मार्ग था। अतः उस समय के संगीत को वैदिक अथवा मार्गीय संगीत के नाम से बोध किया जाता था। समाज में भौतिक-विकास होने के साथ-साथ आध्यात्मिक स्तर गिरता गया, संगीत का बुद्धि-विकास के आधार पर शास्त्रीयकरण हुआ, संगीत का नाम शास्त्रीय संगीत हुआ। यवन-संस्कृति प्रभाव ने समाज के धार्मिक-जीवन की विचारधारा को अधोमुख कर दिया, संगीत को भी अपना स्वरूप बदल लेना पड़ा और पतित समाज के साथ-साथ आज तक गर्त में गिरा हुआ, अपने और मनुष्य के बीच नैसर्गिक-सम्बन्ध को प्रमाणित कर रहा है। वर्तमान विकास-युग में मनुष्य एक जगद्व्यापी समाज का सदस्य हो चुका है, अतः सांसारिक परिस्थितियों का उस पर किसी न किसी रूप में प्रभाव अवश्य पड़ता है। अतः जीवन की गति एक झूले के समान अस्थिर और अनिश्चित बन गई है। मनुष्य उस झूले पर बैठा हुआ सुख-दुख के मध्य पैंग बढ़ाता रहता है। सामाजिक आँधियें उस गति को विकृत कर देती हैं। संगीत उस समय मनुष्य के अन्तःकरण में लीन हो उसको झंझानिल के झपेटों को सहन करने की शक्ति प्रदान करता है। संगीत का वह स्वरूप जो मनुष्य के जीवन-पृष्ठ को सदैव रंजित करने वाला होता है, चलचित्र की भूमिका में प्रधान एवं व्यापक रूप धारण कर पृष्ठ-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमि-संगीत के नाम से पुकारा जाता है। यह संगीत भी इतना ही जटिल होता है जितनी कि चल-चित्र-कथानक-वर्णित परिस्थितियाँ मनुष्य जीवन को जटिल बना देती हैं।

भारतीय सङ्गीत का तात्पर्य गायन वादन और नृत्य से होता है। इनमें प्रत्येक का साधना क्षेत्र इतना विकसित हो चुका है कि एक व्यक्ति किसी एक अंग की साधना कर उसको पूर्णता प्रदान नहीं कर सका है। फिर समाज तो उस क्षेत्र में सफल किसी प्रकार नहीं हो सकता। उसके लिये तो उतनी उच्च कोटि की कला को समझने के लिये समय ही नहीं मिल पाता है। चल-चित्र-जगत, व्यस्त मनुष्य के जीवन को सुरम्य बनाने के लिये उपयुक्त क्षेत्र सिद्ध हो चुका है। गायन, वह भी भावात्मक वादन-विशेष रूप से परिमार्जित किया हुआ और नृत्य-जो कि अपनी कलात्मक जटिलता के कारण प्रेक्षकों का सर दर्द नहीं बनता वरन् अपनी सरलता एवं रसिकता के कारण नेत्रों को लाभप्रद होता है; संगीत अपने पूर्ण स्वरूप में, अभिनय के साथ इस प्रकार सुव्यवस्थित होने पर भी कभी-कभी सफल नहीं हो पाता। कारण इसका, पृष्ठ-भूमि-सङ्गीत है जो निरन्तर, आद्योपान्त, कथानक की भूमिका में, प्रधान श्रोत रूप में प्रवाहित हो, गायन, वादन, नृत्य के साथ-साथ अभिनय को भी रंजित करता रहता है। इसी संगीत के मार्मिक सहयोग में सम्पूर्ण पट-प्रदर्शन का रहस्य छिपा हुआ है। पृष्ठ-भूमि-संगीत (Back-ground music) पाश्चात्य सङ्गीत का सामाजिक स्वरूप है जो वृन्द-वादन से विकसित होकर चलचित्र जगत के हृदय में प्रमुख स्थान प्राप्त कर चुका है। अतः पाश्चात्य देश —फ्रांस, जर्मनी, इटली, रूस, इङ्गलैंड, और हालीवुड के अध्ययन का विषय विशेष बनता जा रहा है। सभी देशों के कलाकार अपनी मौलिकता के आधार पर इस योजना के सफल निरूपण करने में हार्दिक सहयोग प्रदान कर रहे हैं। कलाकार तथा कला-प्रेमी जगत दोनों इस योजना की मार्मिकता से प्रभावित होते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जा रहे हैं। इस विश्वव्यापी योजना ने देशान्तरों में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित कर लिया है। विशेषज्ञ कलाकार इसके अध्ययन तथा अनुशीलन में अपना अमूल्य जीवन दान दे कर, विभिन्न दृष्टि-कोणों द्वारा प्रयोग-सिद्ध कर यथा-सम्भव पूर्णता प्रदान करने में निरन्तर क्रियाशील हैं। हालीवुड के सुप्रसिद्ध विशेषज्ञ मिस्टर क्लोइड जॉर्ज ने इसी पृष्ठ-भूमि-संगीत की अनूठी सेवा की और लोक-प्रियता के साथ-साथ 'सर्वोत्तम-कला' के अनेक पुरस्कार प्राप्त किये। कला और कलाकार के पारस्परिक समन्वय ने एक दूसरे को अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व प्रदान किया है जो दिन प्रति दिन समर्थक क्षेत्रों पर डाली हुई अमिट छाप को रहस्यमयी बनाता जा रहा है।

पृष्ठ-भूमि-संगीत, आधुनिक युग में कलाकार की सर्वोच्च परीक्षा है। इसमें केवल उत्तीर्ण होने के हेतु, कलाकार को संसार में प्रचलित अन्य विद्याओं तथा कलाओं का सामान्य ज्ञान अत्यावश्यक है। परन्तु विशेषयोग्यता प्राप्त करने के लिये, कलाकार की विलक्षण बुद्धि, असाधारण स्मरण-शक्ति तथा संसार के विशेषज्ञान के व्यापक स्वरूप का समन्वय वाँछनीय है। मानवी चित्तवृत्तियों की क्रिया-प्रति-क्रियाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, तथा सङ्गीत की स्वर-लहरी द्वारा उनका पुनः संस्थापन करना सर्वांग सङ्गीतमय कलाकार की कृति हो सकती हैं। वह कलाकार जिसके हृदय में हिंडोले के गीतों से लेकर, व्यथित हृदय के करुण-कलाप तथा श्मशान के वीभत्स अट्टा-हास तक का दृश्य स्वभावतः अंकित हो जाता हो और तज्जनित द्रवीभूत रस से स्निग्ध स्वर स्वयं उस दृश्य की पुनः अनुभूति कराने लगते हैं, ऐसे विलक्षण हृदय वाला कलाकार पृष्ठ-भूमि-सङ्गीत का सफल तथा लोक-प्रिय निर्माता बन सकता है। वास्तव में ऐसे विचित्र कलाकार तो समाज के उत्थान के निमित्त ईश्वरीय देन होते हैं। समाज जिसको पहचान पाता है उससे लाभ उठा लेता है वर्ना तो लोहे की खान में न मालूम कितने हीरे दबे पड़े हैं और पड़े रह सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जटिलताओं पर विचार करना पृष्ठ-भूमि-सङ्गीत के विशेष अध्ययन का विषय बन जाता है अतः उसके सामान्य ज्ञान तथा भारतीय क्षेत्र में उसकी सार्थकता पर विवेचनात्मक दृष्टि डालना श्रेयस्कर प्रतीत होता है।

अनुकरण करना मनुष्य का स्वभाव है। भारतीय संगीत तो इसी अनुकरण की क्रिया द्वारा प्राप्त होने वाली कला रही है। चिर अभ्यस्त स्वभाव ने पृष्ठ-भूमि-संगीत का भी अनुकरण उसी प्रकार किया जिस प्रकार कि राज भक्त सभ्य समाज ने पाश्चात्य वेश-भूषा और वाह्याडम्बर का किया। अस्तित्व तो पृष्ठ-भूमि-सङ्गीत का, भारतीय चलचित्रों में स्थापित हो चुका है परन्तु स्वरूप वही है जो मूर्ति का देवालयों में होता है। पुजारी का ज्ञान, मूर्ति और मन्दिर भक्त समाज के उत्थान पतन का कारण बनता है ठीक उसी प्रकार कलाकार का ज्ञान पृष्ठ-भूमि-संङ्गीत की भावात्मकता, चलचित्र की सफलता एवं प्रेक्षकों की विह्वलता का उत्तरदायी होता है। पूर्व कथित तथ्य के अनुरूप, भारतीय-संगीत निर्माता या तो विद्वान या केवल कलाकार होने के कारण, सफल निर्माता न बन सके हैं। साहित्यिक शब्दों के कलात्मक अर्थ का ज्ञान यदि सङ्गीत-निर्माता को न हो तो अनुभूति-विहीन स्वर-संस्थापन, अभिनय के सम-कंध इसी प्रकार शोभित होता है जिस प्रकार गाड़ी में जोता हुआ एक ओर बैल और एक ओर भैंसा होता है। इस विषमता का प्रभाव प्रेक्षक की मानसिक स्थिति पर पड़ता है जो मूक रूप से उसकी मुखाकृति द्वारा व्यक्त हो जाता है यद्यपि उस अरुचि का कारण कदाचित वह स्पष्ट करने में असमर्थ हो। यदि कुछ अथवा पर्याप्त ज्ञान होता है तो दर्शक-गण आलोचनात्मक उत्तर भी दे देते हैं कि 'म्यूजिक अच्छा नहीं है'। सूर्योदय हो रहा है। एक अभागा, जीवन की अन्तिम घड़ियां गिन रहा है। दूसरा, प्रिय-मिलन के प्रवास के हेतु विह्वल है। दोनों की मानसिक स्थिति चंचल है परन्तु एक में आशा दूसरे में निराशा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूक अभिनय में पृष्ठ-भूमि-सङ्गीत का विशेष कार्यक्रम प्रदर्शित होना उद्देश की पूर्ति का साधक होता है। रुढ़िवादी सङ्गीत निर्माता भैरव को ठूँस ठांस काम चालू कर सकता है परन्तु मनोवैज्ञानिक कलाकार, प्रथम अपने को अभागे की स्थिति में रख गुनगुनायेगा, उसका प्रभाव, अपनी आकृति तथा मुद्रा द्वारा प्रदर्शित की हुई भाव-भंगिमा से संतुलित करेगा। एक बार नहीं अनेक बार, जब तक कि वह स्वयं संतुष्ट होने के साथ-साथ अपने सहयोगी को भी सन्तुष्ट न कर दे। अभिनेता भी तो कलाकार होता है उसके अन्तःकरण में यदि सङ्गीत वांछित भाव को गुदगुदा न सका तो उसकी सफलता पर भी संगीत का विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। और भारतीय-चित्रों की असफलता का रहस्य यह है भी। यदि आज भारतीय कलाकार वैज्ञानिक आधार पर पृष्ठ-भूमि-संगीत तथा अभिनय का सन्तुलन कर सकते हों तो चल-चित्र जगत में भी भारत की सफलता उत्कृष्ठ स्थान प्राप्त कर सकती है और जिन-जिन चित्रों में भव-प्रत्यय कलाकारों ने चित्रों को सर्वांग पूर्णता प्रदान की है वे चित्र अखिल विश्व पुरस्कार विजेता घोषित हो चुके हैं। परन्तु फिर भी असफल चित्रों की संख्या अत्यधिक है। इसका सर्वश्रेष्ठ साधन यही हो सकता है कि जिस प्रकार भारतीय-शिष्ट-मण्डल विदेशों में जा-जा कर भारतीय-संगीत का प्रचार कर रहे हैं उसी प्रकार उनको भिन्न-भिन्न देशों से उनके मौलिक पृष्ठ-भूमि-सङ्गीत का यथोचित ज्ञान प्राप्त कर स्वदेश में प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित कर, प्रगतिशील युवक कलाकारों को उसका क्रियात्मक ज्ञान करावें जिसके द्वारा उनका मौलिक रूप निखर कर संगीत-संसार में चमत्कृत हो समाज की सेवा कर सके।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पूर्ण भारत में एक संगीत पद्धति

भारतवर्ष में मुख्यतः दो सङ्गीत पद्धतियाँ प्रचलित हैं। हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति और कर्नाटकी सङ्गीत पद्धति। इन दोनों पद्धतियों में थाटरचना की दृष्टि से अन्तर है। थाटों में अन्तर होने के कारण प्रत्येक प्रद्धति के रागों में भी अन्तर है।

थाटों और रागों के इस वैषम्य से सङ्गीत कला के वास्तविक स्वरूप का निश्चय नहीं होने पाता। भरत नाट्यम् आदि ग्रन्थों में गायन, वादन और नृत्य का जो उल्लेख मिलता है वह अधिकांश हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति के निकट है। अति प्राचीन सङ्गीत ग्रन्थ भी हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति का समर्थन करते हैं। किन्तु कर्नाटकी सङ्गीत पद्धति इन शास्त्रीय सिद्धान्तों से अलग है। हाँ, सामान्यतः शास्त्रीय विवेचन उसमें भी मिलता है किन्तु आगे चल कर उन नियमों का पालन नहीं किया जाता अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कर्नाटकी सङ्गीत सफलीभूत शास्त्रीय सङ्गीत का विकृत रूप है।

भारतीय सङ्गीत पद्धतियों का इतिहास भाषा के इतिहास से साम्य रखता है। जिस प्रकार संस्कृत भाषा का रूप विश्व की समस्त भाषाओं में मिलता है उसी प्रकार सङ्गीत कला का शास्त्रीय स्वरूप विकृत होकर कर्नाटकी पद्धति आदि अनेक सङ्गीत पद्धतियों में पाया जाता है। देशज भाषाओं का भी वैज्ञानिक ढङ्ग से विकास होता है किन्तु वह एक-रूपता नहीं दिखाई देती जो सार्वकालिक और सार्वभौमिक हो। ठीक यही दशा कर्नाटकी पद्धति है। यह प्रादेशिक पद्धति है जिसका क्षेत्र सीमित है। क्योंकि कर्नाटकी सङ्गीत केवल दक्षिणी प्रान्तों में ही प्रचलित है किन्तु हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति समस्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारत में प्रचलित है। कुछ भी हो, इन दो प्रमुख पद्धतियों के होने से हम यह साधिकार नहीं कह सकते कि सम्पूर्ण भारत में एक संगीत पद्धति है। क्योंकि हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भी दो उप-पद्धतियों में विभक्त हो गई है। विष्णु दिगम्बर पद्धति तथा भातखण्डे पद्धति। थाटों और रागों का वैज्ञानिक विश्लेषण इन दोनों पद्धतियों का एक समान है। किन्तु आरोह अवरोह, पकड़, तथा स्वर विस्तार की दृष्टि से दोनों पद्धतियों की प्रक्रियायें भिन्न-भिन्न हैं। यह द्वैविध्य रागों के वास्तविक स्वरूप को संदिग्ध बना देता है। यद्यपि दोनों के मूलभूत सिद्धान्तों में अन्तर नहीं है तथापि प्रक्रियाओं की विभिन्नता से गायन शैली में अन्तर पड़ जाता है।

रागों के प्रदर्शन में प्र क्रियाओं की इन विषमताओं से गायकों को रागों के रूपों में मनोनुकूल परिवर्तन करने का अवसर मिल जाता है। अतः भावी संगीत कला की ऐसी पद्धति होनी चाहिए जो सम्पूर्ण भारत में एक ही हो। किसी भी देश और काल में संगीत शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् गायक, वादक अथवा नर्तक से एक स्थान पर एक गुरू से शिक्षा ग्रहण करने पर आगे चलकर दूसरे महान् गुरुओं की भी संगीत शिक्षा से सामान्वित हो सकता है इसके अतिरिक्त किसी भी संगीत ग्रंथ से शिक्षार्थी सहायता ले सकता है।

कभी-कभी ऐसा देखने में आता है कि विष्णु दिगम्बर पद्धति के अनुसार सीखे हुये विद्यार्थी यदि ऐसे गुरु के पास संगीत विद्योपार्जन के लिए जाते हैं जो भातखण्डे प्रणाली के अनुयायी हैं तो वह उन्हें बड़ी भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यही नहीं, सभी समय में, सभी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते, यदि भातखण्डे पद्धति का शिक्षार्थी विष्णु दिगम्बर पद्धति के अनुसार प्रणीत ग्रन्थ की सहायता लेनी पड़ती है तो उसे सहज बोध नहीं होंने पाता। हाँ, परीक्षाओं के पाठ्य-क्रमों में एक दूसरे पद्धतियों के परिवर्तन करने के नियम अवश्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बताये गये हैं किन्तु उससे समय और विस्तार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

अतः प्रत्येक संगीतज्ञ का यह परम कर्त्तव्य है कि वह उपर्युक्त इन पद्धतियों का अनुसंधानात्मक अध्ययन कर दोनों के प्रमुख तत्वों को लेकर एक ऐसी समन्व्यात्मिका पद्धति का निर्माण करे जो सार्वभौमिक सर्वकालीन और सर्व-ग्राह्य हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्रपट-संगीत की लोक-प्रियता

सन्त कबीर का बचन—साधु जन 'सार-सार को गहि रहे थोथा देइ उड़ाय' प्राकृतिक नियम का मानवीकरण है। प्रकृति प्रत्येक सारहीन वस्तु का नाश कर, उसमें नवीन शक्ति का आविर्भाव करती है जो नव-जनित पदार्थ की उपयोगिता के रूप में समाज द्वारा मान-सम्मान का उपादान होती है। शास्त्रीय-संगीत सारहीन हो गया। सभ्य-समाज में उसकी अतीत में विलीन वैभवमयी गाथाओं की पुण्य-तिथियाँ सी मनाईं जाती हैं। जन साधारण के पास न इतने साधन हैं और न इतना समय है कि बैठे-बैठे गले बाजी की उड़ान पर दायें-बायें गर्दन हिलाकर वाहवा करके अपना बोझ हलका करें और अन्त में एक लम्बी खड़ी अँगड़ाई लेकर उँगलियाँ और जूटियाँ चट-खाते हुए घर चले आवें। प्रकृति माता ने अपने निराश पुत्रों के निमित्त संगीत को पुनर्जन्म दे दिया। नवीन-संगीत के जीवन में नव-जात-शिशु के समान आकर्षण भी विद्यमान है,नवीन भावनाओं का मधुमय श्रोत भी बह रहा है। उसमें प्रदर्शित कल्पनाओं के साक्षात् उदाहरण भी नाना प्रकार की प्रेरणाएँ निर्गत कर रहे हैं। भिन्न-भिन्न जीवन धाराओं की कल्पना-मयी सृष्टि में इस नव-जात-शिशु रूपी संगीत के दर्शन, वर्तमान युग में, भूत कालिक नीति द्वारा परिपीड़ित जन-साधारण को कितना आनन्द, चैन दे सकते हैं यह साक्षात् है। इसमें प्रमाण की आवश्यकता नहीं।

बँदरी अपने मरे बच्चे को कलेजे से लगाये तीन टाँगों पर लँग-ड़ाती चलती रहे तो उसकी इच्छा अथवा उसको फेंक दे तो उसकी इच्छा। मनुष्य को भगवान ने बुद्धि दी है कि अभी जो बालक है यदि उसको स्नेह न किया जायेगा तो सम्भव है कि उसकी गति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चँदरी के बच्चे जैसी हो जाय। समझदार कलाकारों ने संगीत में से रूढ़िवाद की परम्परा को विदा किया। उसका स्वरूप जन समाज में मुखरित हो उठा। बन्धन खुल गये। मानस-पटल उसका क्रीड़ा-स्थल बन गया। वह भी तो अभाव के कारण शून्य में था। उसको भी चिरपरिचित परन्तु चिरवियोगी परम-मित्र प्राप्त हुआ। दोनों गले मिले ही नहीं अपितु एक गले में बैठ गया तो दूसरा उसके गले पड़ गया। परन्तु अच्छी निभ रही है। क्योंकि चाहे कोई लाख बुराई करे परन्तु सिनेमा-संगीत में सर्वश्रेष्ट विशेषता यह है कि वह अपने भक्त के पास हर समय आ सकता है। ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है कि पहले कमर सीधी करके स्वर-साधन फिर थोड़ा कलेवा करके अलंकार-साधन, फिर यदि गुरुजी की इच्छा हुई तो वही ख्याल स्थाई की बासी रोटियाँ, चाहो तो खाओ सो भी जब तब। चित्रपट संगीत तो मानव समाज के सामान्य जीवन से सम्बन्धित एक भाव व्यंजना होती है जो अनायास ही स्मृति में अङ्कित हो जाती है और स्वभाव में लय हो जाती है, जो याद न करने पर भी स्वयं याद आ जाती है।

चित्र पट-सङ्गीत अपने सरल स्वभाव के कारण लोक जीवन को प्रफुल्लित करने का उपादान है। अन्तर्तम को गुद-गुदा देने वाले शब्दों का भावात्मक आनन्द लेने के लिये प्राकृत अवधी अथवा व्रजभाषा के अनुवाद अथवा शब्द कोष की आवश्यकता नहीं पड़ती और ना ही रचना की कल्पनात्मकता साक्षात् करने के हेतु किसी राज दरबार अथवा रासलीला के स्वप्न देखने पड़ते हैं। सिनेमा-संगीत तो मानव जीवन की वह छोटी सी कहानी होती है जो स्वर-लय से सुसज्जित होने पर अखिल विश्व को अपने में समाहित करने योग्य विराट एवं व्यापक रूप धारण कर लेती है। रजत-पट से ध्वनित हो हृदय कमल को मुकुलित कर इस प्रकार मज्जन और रंजन करती है जिस प्रकार फोटोग्राफर फोटो धो-धो कर चित्रांकन सुदृढ़ बनाता है। रसीले शब्द, यथोचित मुरकियों की अथवा मोतियों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लड़ियों से सुसज्जित, लय के हिन्डोले में झूलती हुई व्यथित हृदय गामिनी, मन-भामिनी, सौदामिनी सी तिरोहित हो अव्यक्त को जब तब आलोकित करती रहती है। क्यों न वह भी, वर्तमान के भौतिक-वादी समाज में विद्यु त सम परमावश्यक सिद्ध हो लोक-प्रिय बन जाये और मानव जीवन की विभिन्न मशीनों को एक ही शक्ति से संचा-लित करे।

यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि सिनेमा-सङ्गीत का गायन क्षणिक अवथा अल्पस्थित आवेश होता है। साथ ही साथ यह भी ध्यान रखना अनुचित नहीं है कि उस सङ्गीत में हृदय हीन को सुहृद बनाने की और शिथिल भावुकता में स्फूर्त्ति प्रस्फुटित करने की वही अलौकिक प्रतिभा अवगुंठित है जो ब्रह्मवेला की प्राण वायु के एक झकोले में निहित संजीवनी का रूप होती है और उसी थोड़े से समय में असंख्य प्राणियों को प्राण दान दे डालती है। मन्त्र का स्वरूप लघुतम होता है परन्तु उसका गुण समस्त ब्रह्मण्ड को तुला के विपरीत अंक में बैठने की चुनौती दे सकता है। ठीक उसी प्रकार यदि सिनेमा सङ्गीत तीन मिनट तीस सैकन्ड के अन्दर वह काम करके चला जाता है जो कि बड़े बड़े कलाकार घन्टों जूझे रहने पर भी नहीं कर पाते—अर्थात् मनोरजन नहीं कर पाते तो समाज तो सङ्गीत और मनरजम दोनों का भूखा होता है क्योंकि उसका समय व्यस्त होता है, स्वभावतः चित्रपट-सङ्गीत में आत्मानन्द का दर्शन कर तृप्त हो जायेगा। दैनिक जीवन की जटिलताओं में उलझे हुये प्राणियों को समय की बचत और मनोरंजन की प्राप्ति उसको निःसन्देह लोक-प्रिय बनाती जा रही है।

कलाकारो की दृष्टि में संगीत, चाहे वर्ण संकर हो अथवा शास्त्र विरुद्ध हो परन्तु है संगीत ही और वह भी अत्यन्त मधुर। यदि सुन्दर साहित्यिक शब्दों के अभाव के कारण संगीत की स्वर-लहरी को भी दूषित मान लिया जाय तो अपनी बुद्धि का अन्यायपूर्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहयोग अहंकार की स्थिति को स्थूल की ओर प्रेरित करता रहता है। राग की परिभाषा में प्रथम गुण वाचक पर्याय 'रंजकता' होता है। विवरण के अन्य तत्व इसी भाव के प्रतिपादक होते हैं। इसी आधार पर न मालूम कितने राग उधार लेकर अपना लिये गये और न मालूम कितने स्वयं कलाकारों ने गढ़कर अपनी जायदाद में मिला लिये। यह सब केवल शास्त्र की आज्ञा से हुआ है। आधार केवल वही रंजकता है। समाज में अनेक प्रकार के जीव हैं। चल-चित्र-संगीत लोक-प्रिय इसी कारण, विशेष रूप से हुआ है कि उसमें देवालयों से लेकर मधुशाला तक का सङ्गीत जीवित रूप में चित्रित किया जाता है। आज यदि समाज का पतन के स्थान पर उत्थान होने लगता है तो सिनेमा-सङ्गीत भी समाज के साथ अपने स्तर को उन्नत बनाता जायेगा। कितने ही कलाकारों ने सङ्गीत के द्वारा सामाजिक स्तर को उन्नत बनाने का प्रयत्न किया, परिणाम घातक सिद्ध हुआ। सभ्य समाज जो सङ्गीत पर पहुँचने में अपने पतन की आशंका से भयभीत रहते थे उन्होंने अवसर आने पर उसी सिनेमा-सङ्गीत को, जिसको कि बहुत से सङ्गीत-व्यवसायी अश्लील कहते हुये नहीं हिचकते, अपना लिया। हरि भक्तों ने भद्दे गीतों के स्थान पर भजन कीर्तन लगा दिये, स्वर-लहरी तो गन्दी होने वाली वस्तु ही नहीं। जैन समाज में सङ्गीत जैसी वस्तु को लोग दूर से ही सुनकर प्रसन्न हो लेते थे उन्होंने भी अपने धार्मिक भजनों को सिनेमा-सङ्गीत के स्थान पर लगाकर अपने मन्दिरों में भजन कीर्तन प्रणाली चालू कर दी। ज्ञानी पुरुषों ने सार को ग्रहण कर थोथा उड़ा दिया परन्तु अज्ञानी तो केवल बुरा-बुरा कहकर अपना समय ही नष्ट कर सके हैं। सङ्गीत तो सर्वदा कल्याण का ही मार्ग होता है परन्तु ज्ञान अज्ञान भी तो निर्देशक होते ही हैं। आज यदि कलाकार जगत अन्तःकरण को विशुद्ध कर रागों के आविर्भाव और तिरोभाव का सच्चा ज्ञान प्राप्त करना चाहता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो उसको उचित है कि शब्द-सृष्टि से परे स्वरों की लड़ी की एक-एक मणि को ठोक बजाकर देखे परखे और हृदयंगम करे। तत्पश्चात् अनुशीलन करे कि अमुक स्वर पर किस-किस राग की छाया पड़ रही है। तब विदित होगा कि सिनेमा-सङ्गीत में वह अलौकिक आभा निहित हैं जिसको कि विद्वान लोग शास्त्रों के पन्ने पलटते-पलटते फाड़ डालने पर भी प्राप्त नहीं कर सकते। वास्तव में उसकी प्रथम किरण ही निर्मल अन्तःकरण को दर्पण के समान दैदीप्यमान कर रहस्योद्घाटन का मार्ग प्रदर्शित कर देती है। परन्तु धूमिल माँट ? लाख पालिश करने पर भी रहता मिट्टी ही है। वास्तव में यही परम तत्व है जो चल-चित्र-सङ्गीत को शास्त्रीय-सङ्गीत के प्रत्युत अधिक लोक-प्रिय बनाता जा रहा है। सम्भव है सङ्गीत की प्राचीन विलक्षणता का कारण भी इसी सिनेमा-सङ्गीत के अध्यात्मिक दृष्टि-कोण से अनुशीलन करने पर प्राप्त हो सके।

खेद का विषय है कि मनुष्य-जीवन का नैतिक पतन अतीत के दुखद इतिहास के पन्नों में बहुत कुछ छिपाया जा चुका है। रुग्ण हृदय इतना व्यथित है कि गिरने की अशंका से भयभीत बना सहारा ढूँढता है। चाहता है दो मधुर शब्द, जो या तो सहानुभूति द्वारा उसके मानसिक बोझ को हल्का कर सकें अन्यथा उसके सामने ऐसा उदाहरण प्रस्तुत कर सकें कि जिसके द्वारा वह स्वयं भार वहन करने के साधन प्राप्त करने में सफल हो सके। अच्छे सामाजिक चित्र वर्तमान समस्याओं को सुलझाने में संगीत से वही काम लेते हैं जो कि डाक्टर इन्जैक्शन से लेते हैं परन्तु प्रभावशील सङ्गीत ही होता है साथ ही प्रभाव तुरन्त होता है और परिणामदायक भी होता है। आर्थिक दृष्टि से भी यह सङ्गीत सुलभ होता है केवल सङ्गीत रास्ता चलते सुना जा सकता है। अतः यह अधिकृत रूप से कहा जा सकता है कि:—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चल-चित्र-सङ्गीत संकुचित विचार धाराओं से परे नाद-ब्रह्म का वह रूप है जिसको पतित-समाज तथा उसकी भाषा से भी उतना ही प्रेम है जितना कि उसको सभ्य समाज तथा उसकी भाषा से—यही उसकी व्यापक लोक-प्रियता का मूल कारण है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय-संगीत के प्रति विद्यार्थी का कर्त्तव्य

'धी मान कार्य साधयेत्' के सिद्धान्त के अनुसार विद्यार्थी-वर्ग का परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वह किसी न किसी प्रकार संगीत के वास्तविक रूप का ज्ञान प्राप्त करे। यद्यपि यह विद्यार्थी-जीवन के उपरान्त का विषय है परन्तु इसका मौलिक संचार विद्यार्थी-जीवन में अंकुरित हो भविष्य में दृष्टिगत होता है अतः सर्वथा उपेक्षित नहीं कहा जा सकता। आज का विद्यार्थी वर्ग कल के भारत का भाग्य विधाता है। विद्या अथवा कला प्राप्ति का उद्देश्य विभिन्न होने पर भी सार्थक तभी हो सकता है जबकि उसमें प्राण हो और सम्बन्धित पात्र को उसके धारण करने पर उसकी प्राण रक्षा का ज्ञान, सामर्थ्य एवं आवश्यकता की अनुभूति हो। अतः विद्यार्थी वर्ग का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह संगीत के प्राण का दर्शन करे संगीत प्राप्त कर उसकी रक्षा करे। रक्षा करने के हेतु वस्तु की उपयोगिता एवं रक्षक में समुचित सामर्थ्य—यह विद्यार्थी के दृष्टि-कोण एवं साधना का विषय है। भारतीय-संगीत का प्राण यवन-संस्कृति एवं सत्ता के प्रभुत्व में छिन्न-भिन्न हो भारतीय-सांस्कृतिक-पृष्ठ-भूमि पर तिरोहित-सा हो गया है। उसका स्वरूप क्षय-पीड़ित रोगी के समान दिन-प्रति-दिन निष्प्रभ हो, विनाश को प्राप्त होता गया है। यह दुखद कहानी वास्तव में संगीत की नहीं अपितु भारतीय-मानव-जीवन की है। दृश्य, दृष्टि और द्रष्ट्वा तीनों का ही पतन हो चुका है और वह भी इतना भयंकर कि वर्तमान की विकसित योजनाएँ भी जो सामाजिक उत्थान के हित में अद्वितीय सिद्ध हो रही हैं, सामाजिक संगीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में किन्हीं अंशों तक अवश्य सफल हैं परन्तु भारत के मूलभूत संगीत का क्षेत्र उनकी पहुँच से भी दूर का विषय हो रहा है । सम्बन्धित गुरुजनों का ज्ञान अंधे की लाठी से आगे पीछे कुछ नहीं है । तब विद्यार्थी वृन्द के सम्मुख संगीत की वास्तविकता का दर्शन एक अबूझ पहेली बन जाता है जिसका सुलझाना इतना ही कठिन प्रतीत होता है जितना कि हाथी के दांतों को पुनः अन्दर करना ।

यों तो मानवता को जीवित रखने के एवं सम्पन्न बनाने के हेतु संगीत को पतन के मार्ग से बचाना, सभ्य-समाज के प्राणीमात्र का कर्त्तव्य हो जाता है परन्तु इसके वास्तविक कर्णधार वे महानुभाव हैं जो संगीत के द्वारा अपना तथा परिवार का भरण-पोषण करने के साथ-साथ समाज में मान-सम्मान का अधिकार भी प्राप्त करने को किसी से पीछे नहीं वरन सबसे आगे होते हैं । परन्तु संगीत की नौका आँखें बन्द कर खेते चले जा रहे हैं राम हवाले । उनको जगाना मानो उनका अपमान करना होता है । जिज्ञासु को गोस्वामी तुलसी-दास-कृत दोहे का उत्तरार्द्ध 'गुरुते पहले जगत-पति जागे राम सुजान' अवश्य लाभ-प्रद होगा परन्तु व्यापक अर्थ में—भगवान राम को तपस्या और ब्रह्मचर्य के बल पर ज्ञान उस आयु से पूर्व ही प्राप्त हो गया कि जिस आयु में गुरु को ज्ञान प्राप्त हुआ था—इसका तात्पर्य यह है कि यदि गुरु जन जाग भी जायें तो भी विद्यार्थियों के बिना जागे संगीत का उद्धार असम्भव है । समय बीत जाने पर उनको भी उसी प्रकार जीवन-यापन की समस्या सुलझाने में व्यथित मन सहित फँसा रहना पड़ सकता है जिसका परिणाम न स्वयं का कल्याण और लोक का । किसी को अपने मन पर, किसी का यहाँ तक कि अपना स्वयं का भी नियंत्रण सहनीय नहीं हो सकता । फिर कलाकार जिसकी परिभाषा जीवन-मुक्त योगी के समान की जाती है किसी की क्या चिंता कर सकता है । भुगतना विद्यार्थी को ही है । गुरुत्व, कर्त्तव्य-धर्म से मुक्त कृपा एवं आशीर्वाद का भंडार है जिसको वर्तमान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समय में धन के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। विकास युग में भेड़ चाल का कोई मूल्य नहीं। फिर समझौता होना भी कठिन और कराना भी मूर्खता है। विद्यार्थीजनों को अपना हित-साधन करने के हेतु अन्वेषण कार्य में प्रवृत्ति महत्त्व पूर्ण है परन्तु परछिद्रान्वेषण उतना ही निन्द्य भी है। कारण यह है कि विद्यार्थी का प्राण-धन, समय और बुद्धि-द्वारा उनका उपयोग होता है जो इसमें सर्वथा नष्ट हो जाता है। उसको तो कलाकारों द्वारा किये गये गायन में संगीत के प्राण का दर्शन करना है जो कि उसका चरम उद्देश होता है।

सङ्गीत को यदि क्षय-पीड़ित रोगी की कल्पना द्वारा देखना है तो विद्यार्थी का वही कर्त्तव्य हो जाता है जो एक डाक्टर अथवा वैद्य का होता है। रोग के कारणों का निदान कर परिचर्या करने पर सफलता की आशा की जा सकती है। यदि रोगी को केवल पौष्टिक पदार्थों का सेवन कराया जाता है तो रोग और भी भयंकर रूप धारण कर लेता है। कलाकार का गायन अथवा कला प्रदर्शन परम शान्त एवं दत्त चित्त हो निष्पक्ष भाव से श्रवण करना; उसकी कला में मनोवैज्ञानिक अथवा वैज्ञानिक विचार धारा का अध्ययन करना; मर्मस्पर्शी स्थलों पर स्मरण-शक्ति का आह्वान करना; परन्तु उस समय किसी की आलोचना पर ध्यान न देना; इतना करने के पश्चात् शास्त्र-अध्ययन कर, सुनी हुई कला का विवरण उस शास्त्र के द्वारा प्राप्त कर स्वतंत्र आलोचना करना और मौन हो जो कान में आवे उसको सुनते रहना; परन्तु अभ्यास करना तो केवल शास्त्रोक्त मार्ग, देश, काल के अनुसार अपने को योग्य पात्र बनाने वाले गुणों से सम्पन्न करके। इस प्रकार अनुशीलन करने पर विवेक जागृत होता है। परन्तु गायक वादक तथा नृत्यकार की मौलिक कला,—वह अंश जो उसके अन्तस्तल से उत्पन्न हो मर्मस्थलों को आहत करता है। उस कला का ज्ञान अथवा अनुभूति करना जनसाधारण का कार्य नहीं है। इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने से पूर्व जिज्ञासु को अपने अंतः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करण का अध्ययन करना अत्यावश्यक होता है। जो मनुष्य अपना रहस्य न जाने, वह यदि अन्य का मर्म दैवयोग से प्राप्त कर लेता है तो भी उसकी भ्रमपूर्ण धारणा उसको निश्चिन्त नहीं रहने देती। इसी कारण गोस्वामी जी ने 'निज मन मुकुर सुधार' कर ही 'रघुवर-विमल-यश' का सफल वर्णन कर डाला और तानसेन जैसे सिद्ध कलाकार अपने अन्तःकरण में गुप्त रहस्य का पार न पाने के कारण अन्ततः गर्त में गिरने से न बच सके यद्यपि यह आध्यात्मिक-क्षेत्र का विषय है तथापि भारतीय-सङ्गीत का मूल-श्रोत होने के नाते भुलाया नहीं जा सकता। विद्यार्थीजनों का उनके मानव-जीवन के हित में यही एक मात्र ऐसा शस्त्र है जिसमें उसकी सफलता का रहस्य छुपा हुआ है। यही उनकी शक्ति है।

सङ्गीत का शरीर अथवा वाह्य स्वरूप अध्ययन करने के निमित्त, तत्सम्बन्धी साहित्य, गेयकाव्य तथा स्वर-लय मिश्रित प्रदर्शन, सामग्री रूप में उपलब्ध हैं। शास्त्र के आधार पर स्वर लय का ज्ञान, पुनः स्वर लय के सम्पर्क से गेय-काव्य की मधुरता एवं गेय काव्य में स्वर, व्यंजनों की पृष्ठ-भूमि पर रसात्मकता का श्रोत; यह उपकरण हैं विद्यार्थी-वर्ग को अध्ययन करने हेतु। एक स्वर का दूसरे से सम्पर्क, वादी सम्वादी अनुवादी स्वरों का प्रेमालाप ही राग और आलाप का पर्याय होता है। और वस्तुतः सङ्गीत के विषय में यह सत्य भी है। मर्यादा स्थिर रखने का कार्य लय का है। रस अथवा प्रेम राग है और स्वर अपनी तथा कथित संज्ञा के आधार पर जीव अंश अथवा ईश्वर के नाम से वोध किया जाता है। देश काल पात्र इस प्रणय के उद्दीपन विभाव हैं। साहित्य एवं काव्य के अध्ययन में मनोवैज्ञानिक दृष्टि-कोण रुढ़िवाद की अपेक्षा अधिक रुचिकर एवं हित साधक सिद्ध होता है। प्राचीन साहित्य का आविर्भाव उस समय के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन की रूप-रेखा, तथा उस पर पड़ने वाले भौतिक प्रभावों का विवेचन लेकर हुआ। कलाकार का आध्यात्मिक जीवन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और पञ्च महाभूतों पर उसका अद्भुत प्रभाव उस समय के सङ्गीतमय संसार का उद्देश होता था जिसके आधार पर वह कलाकार सङ्गीत के द्वारा अपना तथा लोक का कल्याण-कर्त्ता बन उपासना की मूर्ति बन जाता था। तत्पश्चात् सूर और मीरा का सङ्गीत काव्य तत्कालीन धार्मिक विचार धारा का पोषक रहा और फला-फूला। वर्तमान धार्मिक विचारधारा ने सामाजिक रूप धारण कर लिया है। यदि इस समय विद्यार्थीगण रूढ़िवादी स्थाई ख्याल 'अल्ला जाने मौला जाने' अथवा ध्रुपद 'नाद वेद अप्रम्पार' गाने बैठते हैं तो वही पुरानी गन्ध उठती है। जो उनको और श्रोतागण दोनों को असह्य हो उठती है। उसी समय सिनेमा जगत के रंगीन गाने इठलाते हुए आते हैं जिनमें कुछ सभ्य और कुछ अधिक सभ्य अथवा पाश्चात्य सभ्यता के प्रतीक होते हैं। समस्त संसार के विद्यार्थियों के शत्रु, ऐसे गीत होते हैं जो भारतीय सभ्यता का उपहास करते हैं। अश्लील गायन चरित्र का शत्रु होता है। पाश्चात्य-सभ्यता का नग्न-नृत्य अभी यहाँ पर विद्यमान है और संगीत उसकी प्रथम सोपान है। खेद केवल इतना है कि स्वर्ण भूषण खचित लोहे की कील भी उसी भाव बिक रही है। आज यदि विद्यार्थीजन इस आस्तीन के साँप से छुटकारा पाने का प्रयत्न कर वर्तमान युग के सभ्य कवियों की शिष्ट कविता को संगीत में स्थान देते हैं तो आशा है कि संगीत क्षेत्र (मानव हृदय) पर उनकी विशेष कृपा होगी। गीतों की ओट में पतन के मूल को पतन नहीं समझा जा रहा है। वह तो गान के आवरण में एक आभूषण का रूप धारण कर लेता है और विद्यार्थी की शोभा का कारण बन जाता है जैसे बारह सिंघे के सुन्दर सींग-देखने में सुन्दर अवश्य परन्तु जब फँस जाते है पेड़ की डाल में तो—पीते हैं ज़िन्दा खून, जंगली कुत्ते और माँस खाते हैं गीदड़ लोमड़ी और निम्न वर्ग के पशु-पंछी इत्यादि। रूपक अवसाद-पूर्ण है।

कलाकार जीवन-मुक्त होता है। इसका स्थान प्राणीवर्ग से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किंचित उच्चतर स्तर पर माना जाता है। प्राचीन कलाकार परमहंस स्वरूप हो वाक्सिद्ध हो जाता था। परम पद को प्राप्त होता था। अर्वाचीन कलाकार ईश्वर माया के सम्पूर्ण स्वरूपों में सांगोपांग रंगा हुआ, परम नृशंस हो शीघ्र ही परम गति को प्राप्त होता है। अनेकों ऐसे देखने में आये हैं जिन्होंने अपने जीते जी अपनी कला को ठिकाने लगा दिया और स्वयं भी घड़ियाँ गिनते-गिनते अपना नाम अपने साथ ही लेते चले गये। यहाँ पर पानी छान कर पीना और गुरू जान कर करना आवश्यक है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम ऐसे गुरू जनों के प्रति किसी प्रकार के विद्रोह का झण्डा कर दें। यदि किसी की श्लाघा का सिंचन न करना चाहें तो उसके सम्मान की जड़ को हिलाना भी उचित नहीं हैं। नकल से अस्ल का ज्ञान, पत्थर से परमेश्वर का ज्ञान स्थूल से सूक्ष्म का ज्ञान भारतीय-शिक्षा प्रणाली का वैज्ञानिक आधार है। विद्यार्थी तो एक मछली है जो जल-प्रपात में भी उसी सरलता से चढ़ जाती है जिस स्वभाव से वह जल में बहती है। सम्भव है मनोबल अथवा आत्म विश्वास को लुटा देने वाले विद्यार्थी उपरोक्त तथ्यों पर दृढ़ता-पूर्वक विचार करना उचित न समझे परन्तु नव युवक मनीषी जिनको अपना बाल्यकाल सुसंयत नियंत्रण में व्यतीत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है इस प्रकार संगीत के व्यापक रूप का अध्ययन कर अवश्य ही किसी न किसी सफल निष्कर्ष पर पहुँचेंगे और उनको संगीत समाज में अग्रगण्य महान कलाकारों के सूक्ष्म अध्ययन पर विचार विमर्ष करने पर ज्ञात होगा कि उपरोक्त प्रणाली किन्ही अंशों तक उनकी भी सहायक हो चुकी होगी।

आधुनिक युग में, विद्यार्थी की बहुमुखी प्रतिभा, बहुश्रुत ज्ञान एवं बहून्मुखी स्वभाव, उनके व्यापक ज्ञान के उपकरण होते हैं। जो-जो सामाजिक विद्याएँ प्रचलित हैं उनके अन्तर्तम् में एक प्राकृतिक नियम मूल-श्रोत के रूप में निरन्तर प्रवाहित होता-रहता है। उसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञान भी साधना और अभ्यास का विषय है। वह ज्ञान ही नहीं ज्ञान की कसौटी है। यदि उस कसौटी पर कोई भी तथ्य खरा नहीं उतरता है अवश्य ही ज्ञान की वास्तविकता में अवश्य कोई त्रुटि अथवा अभाव होगा। इसी कसौटी का नाम व्यापक ज्ञान हैं। इसी की मान्यता और साधना बुद्धि-प्रधान समाज का गौरव-पूर्ण उद्देश्य है जिसने भारत को अन्य सभ्य जातियों में सदैव अग्रगण्य बनाये रखा। इसी का नाम समाज में अलौकिक प्रतिभा और आध्यात्मिक क्षेत्र में अखंड ज्योति अथवा दिव्य दृष्टि है। यदि विद्यार्थी वर्ग इसको जाग्रत कर सकता है तो अवश्य ही संगीत का पुनरुत्थान, पात्र में उसको सजीव रखने की शक्ति एवं समाज को कल्याण का मार्ग प्राप्त होने की सम्भावना है। इसके प्रतिफल साधक की सफलता स्वर्णाक्षरों में अंकित हो संगीत के इतिहास-पृष्ठ की शोभा बन सकती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्रीय-संगीत की उपोगिता

संगीत का गुण एवं उसका समस्त संसार पर प्रभाव उसका स्वतंत्र महत्व है। इस महत्व का ज्ञान तो व्यक्तिगत अनुभूति ही रहा है और रहेगा भी वैसा ही रहस्य-मय। इस रहस्यमय संगीत की उपयोगिता का क्षेत्र आध्यात्मिक जगत है। वह संगीत, 'संगीतकार की आत्माभिव्यञ्जना है, उसका दर्शन सत रज और तमोगुण की द्युति-धारा में प्रकाशित हो विभिन्न रसों का उत्पादक होता है।' परन्तु जिस समय, मनुष्य अथवा समाज, संगीत का विशेष प्रयोजन को लेकर आह्वान करता है और साधना अथवा प्रदर्शन का कार्य-क्रम चालू हो जाता है, उसी समय संगीत का महत्व, अपना ईश्वर-सदेश आसन छोड़, उपयोगिता, अथवा आवश्यकता-पूर्ति के कर्त्तव्य-पथ का बटोही बनकर, अवधि को प्राप्त हो, पुनः अपने परम धाम अथवा परम तत्व आकाश में लीन हो जाता है। इस प्रकार अगणित अवतरणों द्वारा प्रसारित की हुई उपयोगिता का प्रभाव मानव के अन्तःकरण में स्थाई रूप धारण करता गया है। आभ्यांतरिक परिवर्तन ने अपने प्रति उत्सुकता जागृत की। बुद्धि प्रधान समाज ने अनुभूतियों को लेखनी बद्ध कर संगीत का शास्त्रीय-करण किया। अवश्य ही उन्होंने उसको मनुष्य जीवन में परमोपयोगी ब्रह्म-विद्या एवं सामाजिक-जीवन में परमसुन्दरी ललित-कला के रूप में सांगोपांग दर्शन किया होगा तब ही उन मनीषी तपस्वियों में संगीत के निरूपण की इतनी जिज्ञासा जागृत हुई कि उन्होंने अपने अमूल्य जीवन को इस पर निछावर कर मनुष्य जाति के हित में एक सर्वश्रेष्ठ मार्ग निर्दिष्ट किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह अन्यत्र भी कहा जा चुका है कि गति में प्राण है। वह मनुष्य जो किसी न किसी हित साधन में निरन्तर क्रियाशील रहता है अवश्य ही जीवन-कला से, व्यक्त अथवा अव्यक्त किसी भी रूप में परिचित होता है। (Life for living) जीवन संग्राम, संघर्ष-मय जीवन, जीवन-निर्वाह अथवा जीवन-नैया—यह मनुष्य-जीवन के परिस्थितियों के वशीभूत विशेषण होते हैं। इस तारतम्य की आधारभूत गति की विशेषता, मनुष्य जीवन के अन्तःकरण की शक्ति एवं सहन-शीलता होती है। अतः यह मान लेने में कोई आपत्ति नहीं कि यदि स्थूल हृदय को गतिशील बनाए रखना जीवन संचालन का परमतत्व है तो मनुष्य को मानव बनाने के लिये अन्तःकरण –हृदय के सूक्ष्म स्वरूप का शक्तिशाली एवं गतिशील बनाना भी परमावश्यक है। उसको भी उसके भोजन द्वारा शक्ति प्रदान कर द्रवीभूत बनाना, मानवता का वृक्षारोपण करना होता है। संगीत अन्तःकरण का भोजन है जो परिस्थितियों द्वारा विकृत मानव जीवन में आये हुए ध्वंसक संकल्पों का उन्मूलन कर उसको सत्यं शिवं सुन्दरं का मार्ग आलोकित कर जीवन को अलंकृत करता है। संगीत की यही व्यापक उपयोगिता जीवन के दृष्टिकोण के अनुरूप विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत होती है। पूर्वजों की तपोमयी दिनचर्या का अध्ययन करने पर सांसारिक पदार्थों का अधिकतम त्याग ही प्राप्त होता है। सुकरात का सिद्धान्त (How many things I can do without) 'किन-किन वस्तुओं के बिना मेरा काम चल सकता है' वर्तमान मानव-समाज को मान्य नहीं है। उसको तो प्रकृति के अन्तर्तम की खोज ही, उसके मनुष्य जीवन धारण करने का चर्म उद्देश्य ही वन्दनीय होता है।

खोज के पश्चात् सफलता का प्रतीक, सदा की भाँति, उसका आभूषण होता है। अतः संगीत, सभाज की सुन्दरता होने के नाते, सभ्यता का प्रतीक, जाति अथवा समाज का अलंकार होता है। सभ्य समाज में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसका स्वतन्त्र क्षेत्र होता है जहाँ पर मानवता को गिरा देने वाली छोटे बड़े की संकुचित विचारधारा की पहुँच नहीं होती है। अतएव सामाजिक जीवन का परम सौन्दर्य रूपी संगीत, समाज, में, एक परम-पिता की संतान का संदेश अदृश रूप से उन महानुभावों के कानों में फूँक देता है जो अपने दर्पण को आकाश में ऊँचा कर अपने प्रति-बिम्ब के संतुलन में अन्य मानवों को निम्न-स्तर के प्राणी घोषित कर तदनुसार व्यवहार करने में ही अपना गौरव समझते हैं। परन्तु वास्तव में जो मनुष्य जितना नीचा गिरता जाता है वह अज्ञान-रूपी दर्पण में उतना ही ऊँचा दिखाई देता है। परन्तु संगीत, दर्पण नहीं सुन सकता, उसको सुनने के निमित्त मनुष्य को अपना उच्च स्तर छोड़ जो वास्तव में मनुष्यता के नाते निम्न है, तानसेन का चाकर बन कर ही सुनना पड़ेगा वह शास्त्रीय-संगीत बादशाह न सुन सका अकबर एक साधारण मनुष्य सुन सका। परन्तु मरघटा-ज्ञान भी भ्रमजाल है। जो स्थाई रूप नहीं धारण कर पाता वह आवेश होता है। अतएव शास्त्रीय-सङ्गीत की उपयोगिता भी कुछ विशेष महत्व न रख सकी। परन्तु इतनी प्रिय अवश्य हुई कि पद में न सही जाति ही में सही उसको यवन-जाति ने सदा के लिये अपना लिया। कूडा कवाड़ घर में लाकर नहीं भरा जाता है अवश्य ही उपयोगी समाग्री सम्पन्नता सूचक होसी है। और आकर्षण का केन्द्र होती है।

निकट अतीत की घटनाओं को लींजिये। अंग्रेज साहित्यकारों ने अपनी संतान को विद्या-अध्ययन एवं चरित्रनिर्माण के विषय में शिक्षाएँ दी है परन्तु सङ्गीत के विषय में आदेश दिये हैं। विद्या यदि जीवन का अलंकार है तो सङ्गीत अलंकार तथा अलंकृत जीवन की आभा है। प्रतिभा-हीन आभरण यद्यपि व्यवसाय अथवा उदर पूर्ति का साधन हो सकता है परन्तु समाज में मान सम्मान प्राप्त करने के हेतु उस पर पालिश होना अत्यावश्यक है। इल्मे-मजलिस यवन-संस्कृति की महत्वपूर्ण कला है। पाश्चात्य सभ्यता इसी कला पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष ध्यान देती रही है। सङ्गीत कला इसकी परमोच्च परिचायिका है। मौतिक अथवा वैज्ञानिक-विकास से पूर्व प्रवासी व्यापारी वर्ग अपनी संतान को वेश्याओं अथवा अप्सराओं से क्रियात्मक मनोविज्ञान की शिक्षा दिलाया करते थे। इन सब उदाहरणों का निष्कर्ष हमारे पूर्वजों ने 'साहित्य-सङ्गीत-कला विहीना साक्षात् पशु पुच्छ-विषाण हीना में व्यक्त कर दिया है। आहार निद्रा भय मैथुन क्रियाओं में मनुष्य और पशु समान वृत्ति रखते हैं परन्तु आत्मभिव्यञ्जना के सदृश अन्य के मनोभावों का अध्ययन मनुष्य जीवन में उपयोगी विशेषता है। जो सफलीभूत होने पर संसार को एक कल्पनामय स्वर्ण जगत के समीप ले जाती है। परन्तु इतना सुन्दर संसार, सुन्दरी, धन मान, और पदद्वारा प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि यह तो सब क्षण भंगुरी संसार की माया है। वह सुख स्वप्न संसार तो केवल सङ्गीत-मय रचना होती है जहाँ अनेकों धनी बली एवंप्रतिभा-शाली लुटकर चले आते हैं और लुटे से ही फिरते रहने में आनन्द भी लेते हैं क्योंकि उनको उनकी वास्तविकता का दर्शन होने पर उसी प्रकार चेत हो जाता है जिस प्रकार भेड़ बकरियों के गिरोह में घास चरते हुए सिंह के बच्चे को उसका स्वरूप दर्शन कराने पर होता है। फिर उसको 'दिये लोभ चस्मा चखन लघु पुन बड़ो लखाय' का वास्तविक ज्ञान हो जाता है। अपने जीवन-पथ का स्वयं निर्माता हो अन्य सोये हुये सिंहों को जगा अपना कर्त्तव्य पूरा करता है। इतिहास के पन्नों के उलट कर देखिये संसार के अग्रगण्य नेताओ के जीवन में सङ्गीत का विशेष स्थान होता था जिसका उपयोग वे अपनी बुद्धि बल के द्वारा सार्थक बनाते थे। फ्राँस के विप्लव से पूर्व भी राज-प्रासादों में सङ्गीत होता था, लखनऊ के नवाबों को भी सङ्गीत का व्यसन था परन्तु उसकी उपयोगिता केवल मन बहलाव होता था। कारण स्पष्ट है कि वह सङ्गीत शास्त्रीय नहीं था। यदि शास्त्रीय होता तो उसका शास्त्रोक्त रीति से साधन किया जाता और उसी रीति से उपयोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया जाता और तब वास्तव में वह मनुष्य और समाज इतना सुदृढ़ और सुसंगठित बना देता कि कदाचित् औरंगजेब को संगीत गहरा दफ़न कराने की आवश्यकता प्रतीत न होती। वह भी सुलतान अलाउद्दीन के सदृश उसको उपयोगी समझ अपनाने का प्रयत्न करता। संगीत का शास्त्रीय स्वरूप और तदनुसार कला प्रदर्शन जितना उपयोगी अथवा लाभप्रद सिद्ध हो सकता है उतना ही उसका विकृत स्वरूप समाज को हानिकर हो सकता है। शास्त्रीय-संगीत का शास्त्रोक्त साधन करने पर प्राणवायु जितना शक्तिशाली हो सकता है उतना ही अनियमित संगीत-साधन प्राणघातक सिद्ध होता है। भ्रष्ट संगीतकार अधिकांश क्षय के रोगी होकर मरते हैं अथवा दीर्घायु लाभ नहीं कर पाते जब कि संगीत को आयु, बुद्धि और बलवर्धक कहा गया है। प्राचीन समय में संगीत के द्वारा रोगों की परिचर्या की जाती थी। उसका उपयोगात्मक ज्ञान न होने के कारण मनुष्य उस लाभ से वंचित है। बुद्धि को प्रखर बनाने का यह एक अनुपम यंत्र है फिर भी सङ्गीतकार गली-गली मारे फिरते हैं परन्तु वे जो ज्ञान एवं साधना को शास्त्रीय आधार से प्रथक रख कर अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पका बैठे हैं। उनकों अपनी ही मानसिकस्थिति का बोध एवं संतुलन करने की शक्ति नहीं है फिर अन्य प्राणियों से मनौवैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा व्यवहार की आशा तो किसी प्रकार भी नहीं की जा सकती। जहाँ-जहाँ शास्त्र विमुख सङ्गीतकारों का सम्मेलन होता रहा है अवश्य ही ऐसा वातावरण बन गया जो कुछ क्षणों की रंजकता के पश्चात् शीत अथवा उग्र युद्ध का अखाड़ा बन गया। कारण स्पष्ट है निर्णय का आधार है जिसकी लाठी उसकी भैंस। परन्तु जो विद्वान शास्त्रीय सङ्गींत का आधार लेकर समाज को सम्बोधित कर रहे हैं वे समाज में सम्मान भी पा रहे हैं मनुष्य वर्ग को अपनी बुद्धि के अनुसार चेत करा रहे हैं। अन्वेषण कार्य चालू है समाज में सद्भावना का संचार भी दिन प्रति दिन घनीभूत होता जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसी है शास्त्रीय संगीत की महिमा। परन्तु यह अवश्य ध्यान रखना उचित है कि 'स्वाति नक्षत्र का जल केले के पेड़ में भी जाता है। और सर्प के मुख में भी।' उपयोगिता पदार्थ विशेष से लाभ अथवा हानि उठाने का नाम है। यह मनुष्य की बुद्धि व्यवसाय और पदार्थ के महत्व का समन्वय है अतः स्वतंत्र अध्ययन त्रुटि-पूर्ण हो सकता है। अतएव विद्यार्थी-वर्ग इसी सिद्धान्त को ध्यान में रख अनेक विचार-धाराओं, द्वारा इसका विस्तृत मनन कर सकता है। और तभी संगीत-साधना से इच्छित लाभ की सम्भावना भी की जा सकती है।

—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi